आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

# विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष : २४ सितम्बर–२००५ अंक : ५

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

# भगवान् श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर

## नम्र निवेदन

प्रिय, भक्तजन एवं सज्जनो !

नागपुर नगर में स्थित रामकृष्ण मठ स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण संघ का ही एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है जो पिछले ७४ वर्षों से भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के आदर्शवाक्य 'शिवज्ञान से जीवसेवा' को उद्देश्य मानकर जनता की अनेकविध सेवाओं में प्रयत्नशील रहा है।

मठ का वर्तमान मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होने तथा भक्तों की बढ़ती संख्या से प्रार्थना-कक्ष छोटा पड़ने के कारण विवश होकर हमने पुराने भवन के स्थान पर ही संकल्पित बड़ा मन्दिर का निर्णय लिया है जिसके विवरण निम्नलिखित हैं-

| | |
|---|---|
| मन्दिर की लम्बाई एवं चौड़ाई | १४७ × ४८ |
| मन्दिर की ऊँचाई | ६७ |
| गर्भ-मन्दिर ( पूजागृह ) | १८ ६ × १८ ६ |
| उपासना कक्ष ( ५०० भक्तों के बैठने के लिये ) | ६७ × ४० |
| दोनों ओर के बरामदे | ६७ × ४ |
| मन्दिर-तलघर एवं सभा भवन | ९४ ६ × ५४ |

इस समस्त निर्माण कार्य पर लगभग तीन करोड़ रुपयों के व्यय के लिये यह मठ जन साधारण से मिले दान पर ही निर्भर है। अतः आपसे हमारा आन्तरिक अनुरोध है कि मानवता की सर्वांगीण उन्नति हेतु प्रस्तावित इस योजना के लिए आप **उदारतापूर्वक दान** दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का आप सभी पर आशीर्वाद रहे, इस प्रार्थना सहित-

कृपया ध्यान दें-

दान की राशि डी.डी. चेक द्वारा **रामकृष्ण मठ**, नागपुर के नाम पर भेजें। दान की राशि आयकर की धारा ८०-जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। विदेशी मुद्रा में दिया गया दान भी स्वीकार किया जाएगा।

प्रभु की सेवा में

***( स्वामी ब्रह्मस्थानन्द )***

अध्यक्ष

रामकृष्ण मठ धन्तोली नागपुर

---

**रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर-४४० ०१२**

फोन २५२३४२२, २५३२६९०, फॅक्स २५३७०४२

ई-मेल rkmath@nagpur.dot.net.in

॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥

# विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख
**हिन्दी मासिकी**


**सितम्बर–२००५**

सम्पादक
**डॉ० केदारनाथ लाभ**
सहायक सम्पादक
**ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा**

वर्ष २४
अंक ५

वार्षिक ६०/- एक प्रति ६/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क
(20 वर्षों के लिए) ७००/-
संरक्षक-योजना
न्यूनतम दान–१०००/-

–: सम्पादकीय कार्यालय :–

**विवेक-शिखा**

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर
छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)
दूरभाष : (०६१५२) २३२६३९

संस्थापक प्रकाशिका
**स्व० श्रीमती गंगा देवी**


## इस अंक में

# विवेक शिखा

## के आजीवन सदस्य

२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली ( पं.बं. )
२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली ( पं.बं. )
२०५. अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा सारण ( बिहार )
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी, काराधीक्षक जमशेदपुर ( झारखण्ड )
२०७. सचिव, रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर ( गुजरात )
२०८. सचिव, रामकृष्ण मिशन, राँची ( बिहार )
२०९. श्रीमती शुभा कामत-मुम्बई ( महाराष्ट्र )
२१०. श्री बी. एल. अग्रवाल, नगाँव ( आसाम )
२११. श्री कैलास खेतान, नगाँव ( आसाम )
२१२. श्रीमती शोभा मनोत, कोलकाता
२१३. श्री संजय जिंतुरकर, औरंगाबाद ( महाराष्ट्र )
२१४. श्री कृष्ण कुमार नेवटिया, कोलकाता
२१५. श्री नन्द लाल टाँटिया, उत्तर काशी
२१६. श्रीमती मंजु गुप्ता, वाराणसी
२१७. श्रीराम कुमार शुक्ला, बाराबंकी
२१८. डॉ० दिनेशचन्द्र पाठक, चम्पावत
२१९. श्रीमती वसन्ती शर्मा, ऊधम सिंह नगर
२२०. श्रीमती विद्या मुरारी, पिथौरागढ़
२२१. श्रीमती गीता मर्थला, नैनीताल
२२२. रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर
२२३. श्री डॉ० डी० शर्मा, भोपाल

## विवेक शिखा के संरक्षक

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर **'विवेक शिखा'** के 'स्थायी कोष' की योजना बनायी गयी है । जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार ) रुपये या इससे अधिक रुपये 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे । विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे । विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं । यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है ।

**व्यवस्थापक**

## संरक्षक सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | श्रीमती कमला घोष | - इलाहाबाद | -३,०००/ |
| २. | श्री नन्दलाल टाँटिया | - कोलकाता | -१,०००/ |
| ३. | श्री हरवंश लाल पाहड़ा | - जम्मूतवी | -१,०००/ |
| ४. | श्रीमती निभा कौल | - कोलकाता | -१,०००/ |
| ५. | डॉ. सुजाता अग्रवाल | - कर्नाटक | -१,०००/ |
| ६. | श्रीमती सुभद्रा डाकमर | - कोलकाता | -५,०००/ |
| ७. | स्वामी प्रत्यगानन्द | - चेन्नई | -१,०००/ |
| ८. | श्रीमती रजना प्रसाद | - रायपुर | -१,००० |
| ९. | श्री जी.पी.एम. धिमीरे | - काठमाडू | -१,०००/ |
| १०. | डॉ० निवेदिता बक्शी | - कुर्ला प०मु० | -१,००० |
| ११. | श्री उमापद चौधरी | - देवघर | -१,०००/ |
| १२. | श्री शत्रुघ्न शर्मा | - फतेहबाद | -१,०००/ |
| १३. | श्री प्रभुनाथ सिंह | - मांन, बिहार | -१,०००/ |
| १४. | श्री रामकृष्ण वर्मा | - कोटा राजस्थान | -१,००० |
| १५. | श्री कात्यानन्द झा | - पटना, बिहार | -१,००० |
| १६. | श्री रामअवतार चौधरी | - छपरा, बिहार | -१,००० |
| १७. | डॉ. निधि श्रीवास्तव | - जमशेदपुर | -१,०००/ |
| १८. | श्री सतीश कुमार वंशल | - दिल्ली | -१,०००/ |
| १९. | श्री उदयवीर शर्मा | - खंडवाया उ.प्र. | -१,००० |
| २०. | श्री आर. बी. देशमुख | - पुणे | -१,००१ |
| २१. | कुमारी उषा हेगड़े | - पुणे | -१,०००/ |
| २२. | श्री राजकेश्वर राम | - पटना, बिहार | -१,०००/ |
| २३. | डॉ. ( श्रीमती ) नीलिमा सरकार | - कोलकाता | -१,०००/- |
| २४. | श्री एन.के. वर्मा | - मुम्बई | -१,०००/ |
| २५. | श्री अशोक राव | - छिंदवारा | -१,१००/ |
| २६. | श्री मोती लाल खेतान | - पटना | -१,०००/ |
| २७. | डॉ. प्रदीप कुमार बक्शी | - कोलकाता | -२,००० |
| २८. | डॉ. शरत् मेनन | - मुम्बई | -१,००० |
| २९. | श्री रामकृष्ण आश्रम | - मैसूर | -१,०००/ |
| ३०. | श्रीमती छविराज सिंह | - गाजीपुर | -१,०००/ |
| ३१. | श्री पंकज कुमार | - अ० प्रदेश | -१,०००/ |
| ३२. | श्री ए० डी० भट्टाचार्य | - भद्रकाली | -१,००० |
| ३३. | श्रीमती सरला बेन पाठक | - बडोदरा | -१,०००/ |
| ३४. | डॉ० सुचरिता सेन | - राजकोट, गुजरात | -१,०००/ |
| ३५. | श्री जवाहर लाल वैश | - जयन्त, म०प्र० | -१,०००/ |

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो ।

# विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख
हिन्दी मासिकी

वर्ष–२४ | सितम्बर–२००५ | अंक–५


**इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा । निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ॥**

## श्रीरामकृष्ण ने कहा है

( १ )

मन में ही बन्धन है और मन में ही मुक्ति। अगर तुम कहो, "मैं मुक्त हूँ ! मैं ईश्वर की सन्तान हूँ ! मुझे कौन बाँध सकता है !" तो तुम मुक्त ही हो जाओगे। जिस आदमी को साँप ने काटा है वह अगर पूरे विश्वास और दृढ़ता के साथ कहे कि 'मुझ पर विष नहीं चढ़ा, विष नहीं चढ़ा !' तो अवश्य ही उस पर विष का परिणाम नहीं होता।

( २ )

विश्वास और ज्ञान में परस्पर सम्बन्ध है। विश्वास जितना बढ़ेगा, उतना ही अधिक ज्ञान प्राप्त होगा। विश्वास न हो तो ज्ञान की आशा करना वृथा है। जो गाय चुन-चुनकर खाती है वह दूध कम देती है। और जो घास-पत्ती, कड़वी, चोकर-भूसा जो मिले वही गपागप खा जाती है वह घर्र-घर्र दूध देती है। उसके दूध की धार नहीं टूटती।

( ३ )

भगवान को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की व्याकुलता चाहिए, जानते हो ? सिर में घाव हो जाने पर कुत्ता जिस प्रकार बेचैन होकर दौड़ता फिरता है, भगवान के लिए भी उसी प्रकार की छटपटाहट चाहिए।

( ४ )

यात्रा-अभिनय ( नौटंकी की तरह एक प्रकार का धार्मिक नाटक ) में शुरू में जब तक लोग मृदंग, करताल आदि बजाते हुए ऊँचे स्वर में 'हे कृष्ण, आओ, आओ, कहकर गाते रहते हैं, तब तक कृष्ण सज-धजकर आड़ में तम्बाकू पीते और गपशप करते बैठे रहते हैं। पर जब वह सब शान्त हो जाता है और नारद-ऋषि आकर वीणा बजाते हुए प्रेम सहित कोमल स्वर से गाते हुए पुकारने लगते हैं, "हे गोविन्द ! मेरे जीवन ! मेरे प्राण !" तब कृष्ण अधिक देर नहीं ठहर सकते, व्यग्र होकर तत्क्षण मंच पर आ जाते हैं। इसी तरह, जब तक साधक 'प्रभो, दर्शन दो', 'प्रभो दर्शन दो' कहकर जोरों से पुकारता रहता है, तब तक जानना प्रभु वहाँ नहीं आए हैं। जब प्रभु का आगमन होता है, तब साधक भाव से गद्‌गद हो चुप हो जाता है, फिर जोर से नहीं पुकारता। साधक जब भाव से गद्‌गद होकर प्रेममग्न हृदय से प्रभु का स्मरण करता है तब प्रभु भी आए बिना रह नहीं सकते।

( ५ )

जिसने ईश्वर की शरण ली है उसका कदम कभी नहीं चूकता ।

□□□

# वन्दना

—डॉ० केदारनाथ लाभ

मेरे मन-मानस मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो ।

तुम ही मेरी पूजा-अर्चा

कीर्त्तन वन्दन चिन्तन चर्चा

निज पद-रज से मम जीवन को, प्रभु नव वृन्दावन धाम करो !

मेरे मन-मानस मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो !!

नयनों में रूप तुम्हारा हो

उर में तव रस की धारा हो

अधरों पर नाम तुम्हारा हो, प्रभु ऐसा आठो याम करो !

मेरे मन-मानस-मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो !!

तुमने गिरीश को था तारा

हो गया रसिक भंगी न्यारा

सँवरी विनोदिनी नटी नाथ, मुझ पर करुणा अविराम करो !

मेरे मन-मानस-मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो !!

मन काम क्रोध मद मोह हरो

अब और न अधिक मुझे बिसरो

कर्मों के कलरव पर नर वर, धर अंकुश पूर्ण विराम करो !

मेरे मन-मानस-मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो !

ஒஒஒ

# आत्म विश्वास

**—स्वामी विवेकानन्द**

मनुष्य मनुष्य के बीच जो भेद है वह केवल आत्मविश्वास की उपस्थिति तथा अभाव के कारण ही है, यह सरलता से ही समझ में आ सकता है। इस आत्मविश्वास के द्वारा सब कुछ हो सकता है। मैंने अपने जीवन में ही इसका अनुभव किया है, अब भी कर रहा हूँ, और जैसे-जैसे आयु बढ़ती जा रही है, उतना ही यह विश्वास दृढ़तर होता जा रहा है। जिसमें आत्मविश्वास नहीं है, वही नास्तिक है। प्राचीन धर्मों के अनुसार जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। नूतन धर्म कहता है, जो आत्मविश्वास नहीं रखता, वही नास्तिक है। किन्तु यह विश्वास केवल इस क्षुद्र 'मैं' को लेकर नहीं है, क्योंकि वेदान्त एकत्ववाद की भी शिक्षा देता है। इस विश्वास का अर्थ है—सबके प्रति विश्वास, क्योंकि तुम सभी एक हो। अपने प्रति प्रेम का अर्थ है सब प्राणियों से प्रेम, समस्त पशु पक्षियों से प्रेम, सब वस्तुओं से प्रेम—क्योंकि तुम सब एक हो। यही महान् विश्वास जगत् को अच्छा बना सकेगा। यही मेरा विश्वास है। वही सर्वश्रेष्ठ मनुष्य है, जो सचाई के साथ कह सकता है, ''मैं अपने सम्बन्ध में सब कुछ जानता हूँ।'' क्या तुम यह जानते हो कि तुम्हारी इस देह के भीतर कितनी ऊर्जा, कितनी शक्तियाँ, कितने प्रकार के बल अब भी छिपे पड़े हैं ? मनुष्य में जो है, उस सबका ज्ञान कौन-सा वैज्ञानिक प्राप्त कर सकता है ? लाखों वर्षों से मनुष्य पृथ्वी पर है, किन्तु अभी तक उसकी शक्ति का पारमाणविक अंश मात्र ही प्रकाशित हुआ है। अतएव तुम कैसे अपने को जबरदस्ती दुर्बल कहते हो ? ऊपर से दिखनेवाली इस पतितावस्था के पीछे क्या सम्भावना है, क्या तुम यह जानते हो ? तुम्हारे अन्दर जो है, उसका थोड़ा सा तुम जानते हो। तुम्हारे पीछे है शक्ति और आनन्द का अपार सागर।

**आत्मा वा अरे श्रोतव्यः**—इस आत्मा के बारे में पहले सुनना चाहिए। दिन-रात श्रवण करो कि तुम्हीं वह आत्मा हो। दिन-रात यही भाव अपने में व्याप्त किये रहो, यहाँ तक कि वह तुम्हारे रक्त के प्रत्येक बूँद में और तुम्हारी नस नस में समा जाय। सम्पूर्ण शरीर को इसी एक आदर्श के भाव से पूर्ण कर दो—''मैं अज, अविनाशी, आनन्दमय, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान नित्य ज्योतिर्मय आत्मा हूँ'—दिन-रात यही चिन्तन करते रहो, जब तक कि यह भाव तुम्हारे जीवन का अविच्छेद्य अंग नहीं बन जाता। इसी का ध्यान करते रहो—और इसी से तुम कर्म करने में समर्थ हो सकोगे। 'हृदय पूर्ण होने पर मुँह बात करता है—हृदय पूर्ण होने पर हाथ भी काम करते हैं।' अतएव इस प्रकार की अवस्था में ही यथार्थ कार्य सम्पूर्ण हो सकेगा। अपने को इस आदर्श के भाव से ओतप्रोत कर डालो—जो कुछ करो उसी का चिंतन करते रहो। तब इस विचार शक्ति के प्रभाव से तुम्हारे सम्पूर्ण कार्य वृहत्, परिवर्तित और देवभावापन्न हो जायँगे। अगर 'जड़' शक्तिशाली है, तो 'विचार' सर्व शक्तिमान है। इस विचार से अपने जीवन को प्रेरित कर डालो, स्वयं को अपनी तेजस्विता, सर्वशक्तिमत्ता और गरिमा के भाव से पूर्णतः भर लो। ईश्वरेच्छा से काश कुसंस्कार पूर्ण भाव तुम्हारे अन्दर प्रवेश न कर पाते ! ईश्वर कृपा से काश हम लोग इस कुसंस्कार के प्रभाव तथा दुर्बलता और नीचता के भाव से परिवेष्टित न होते ! ईश्वरेच्छा से काश, मनुष्य अपेक्षाकृत सहज उपाय द्वारा उच्चतम महत्तम सत्यों को प्राप्त कर सकता ! किन्तु उसे इन सबमें से होकर ही जाना पड़ता है; जो लोग तुम्हारे पीछे आ रहे हैं, उनके लिए रास्ता अधिक दुर्गम न बनाओ।

(वि० सा० ८/१२-१३)

❑

---

जब भगवान ने तुम्हें संसार में ही रखा है तो तुम क्या करोगे ? उनकी शरण लो, उन्हें सब कुछ सौंप दो, उनके चरणों में आत्म समर्पण करो, ऐसा करने से फिर कोई कष्ट नहीं रह जायगा। तब तुम देखोगे कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है।

**—श्रीरामकृष्ण देव**

# स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज की महासमाधि

बड़े दुःख के साथ हमें सूचित करना पड़ता है कि रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के 13वें संघगुरु श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज गत 25 अप्रैल को महासमाधि निमग्न हो गए। वह 96 वर्ष के थे। पूज्यपाद स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज का जन्म केरल के त्रिक्कूर गाँव में 15 दिसम्बर सन् 1908 ई० को हुआ। उनका नाम रखा गया शंकर। सन् 1926 ई० में केवल 18 वर्ष की आयु में ही शंकर ने रामकृष्ण संघ की मैसूर शाखा में ब्रह्मचारी के रूप में प्रवेश किया। सन् 1933 ई० में श्रीरामकृष्ण देव के अन्यतम मंत्र शिष्य प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी शिवानन्दजी द्वारा उनकी विधिवत् संन्यास दीक्षा हुई और गुरुदेव ने नाम दिया "स्वामी रंगनाथानन्द"।

नवीन संन्यासी प्रथम नौ वर्ष मैसूर आश्रम में कार्यरत रहे। पहले 6 वर्ष वे आश्रमवासियों के लिए भोजन बनाते, बर्तन धोते और दूसरे घरेलू काम-काज इत्यादि करते रहे। फिर उनपर छात्रावास की देख-रेख का भार पड़ा। उसके बाद अगले तीन वर्ष स्वामीजी रामकृष्ण संघ की बंगलौर शाखा में युवकों के बीच कार्य करते रहे। 1939 से 1942 तक वे रामकृष्ण मिशन रंगून ( बर्मा ) के सचिव एवं पुस्तकालयाध्यक्ष रहे। अगस्त 1942 से अगस्त 1948 तक वे रामकृष्ण मठ व मिशन, कराँची ( जो अब पाकिस्तान में है ) के अध्यक्ष रहे। इसी अवधि में उन्होंने जनसाधारण से धन संग्रह करके सन् 1943 ई० में बंगाल में पड़े अकाल से त्रस्त लोगों के लिए एक विशेष जहाज से 1250 टन चावल कलकत्ता भेजा और 1,50,000/- रुपये बंगाल और बिहार के और केरल के हैजे से पीड़ित व्यक्तियों के सेवार्थ भेजे। सितम्बर 1949 से मार्च 1962 तक वे रामकृष्ण मिशन नई दिल्ली के सचिव पद पर सुशोभित रहे। इस अवधि में वे श्री मोरारजी देसाई, श्री यू.एन. ढेबर, सरोजिनी नायडू, विजय लक्ष्मी पंडित जैसे तत्कालीन राजनीतिक नेताओं के आकर्षण का केन्द्र बने रहे और दिल्ली की जनता में एक विद्वान सुवक्ता के रूप में ही लोकप्रिय नहीं हुए, बल्कि एक आध्यात्मिक प्रेरणा के स्रोत बन गये। ये जहाँ भी जाकर प्रवचन करते हजारों की भीड़ पहुँच जाती।

अप्रैल 1962 से नवम्बर 1967 तक उन्होंने रामकृष्ण मिशन इंस्टीच्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता के सचिव के रूप में न केवल भारत बल्कि विदेशों से आने वाले विद्वानों में अपनी विद्वत्ता की अमिट छाप छोड़ी।

वर्षों तक भारत सरकार ने उन्हें नेशनल एकेडेमी ऑफ एड्मिनिस्ट्रेशन, मसूरी तथा नेशनल डिफेन्स कॉलेज, नई दिल्ली के प्रशिक्षणार्थियों को सम्बोधित करने के लिए प्रत्येक वर्ष आमन्त्रित किया। सन् 1973 ई० से जनवरी 1993 तक वे रामकृष्ण मठ, हैदराबाद के अध्यक्ष रहे।

सन् 1946 से 1972 तक स्वामीजी उत्तर व दक्षिण अमेरिका, एशिया, अफ्रीका, रूस, पोलैण्ड और चेकेस्लोवाकिया सहित यूरोप के 50 देशों में अत्यन्त व्यस्त व्याख्यान-यात्रा करते रहे। सन् 1973 से 1986 तक प्रत्येक वर्ष ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, हॉलैण्ड और जर्मनी में वेदान्त का संदेश पहुँचाते रहे।

वे एक अन्तराष्ट्रीय सुवक्ता के रूप में विख्यात थे और भारत तथा अन्य देशों के हजारों श्रोताओं के आकर्षण का केन्द्र बने हुए थे।

सन् 1961 से स्वामीजी रामकृष्ण मठ के ट्रस्टी बोर्ड के सदस्य तथा रामकृष्ण मिशन की गवर्निंग बॉडी के सदस्य रहे। अप्रैल 1989 ई० से स्वामी जी रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के सह-अध्यक्ष रहे और 7 सितम्बर, 1998 ई० से रामकृष्ण संघ के 13वें अध्यक्ष के रूप में संघगुरु बने। 1992 के अप्रैल में उन्होंने रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा के नव निर्मित भवन का उद्घाटन किया।

स्वामीजी की रचनाएँ या उनके व्याख्यानों के संकलन बहुत सी पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। उनके भाषणों को ओडियो और विडियो टेप के रूप में भी रखा गया है।

अखिल विश्व में फैले गृही एवं संन्यासी शिष्य तथा उनकी कृपा और करुणा के संपर्क में आनेवाले असंख्य सौभाग्यशाली रामकृष्णानुरागी उनकी असाधारण प्रतिभा के साक्षी हैं।

❑

# रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के नवीन अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज

विवेक शिखा के पाठकों को यह सूचित करते हुए मुझे अपार आनन्द का अनुभव हो रहा है कि रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन की न्यासी परिषद (बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज) तथा प्रबंध समिति ने गत २५ मई २००५ की अपनी महत्वपूर्ण बैठक में श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज को सर्व सम्मति से रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन का परमाध्यक्ष निर्वाचित किया है। वे रामकृष्ण संघ के १४वें परमाध्यक्ष हैं।

स्वामी गहनानन्द जी १४ अप्रैल १९९२ से रामकृष्ण मठ एवं मिशन के परम उपाध्यक्ष थे। उन्होंने गत २५ अप्रैल २००५ को श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज के महासमाधि में लीन होने के उपरान्त उनका स्थान ग्रहण किया है।

स्वामी गहनानन्द जी का जन्म अक्टूबर, १९१६ में सिलहट जिले (अब बंगला देश) के पहाड़पुर ग्राम में हुआ था। अपने छात्र जीवन में ही उन्होंने श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के सन्देशों एवं उपदेशों का अध्ययन किया था तथा उनकी ओर गहन भाव से आकृष्ट हुए थे। वे रामकृष्ण संघ के कुछ समर्पित संन्यासियों, खासकर स्वामी प्रभानन्द जी (केतकी महाराज) जो उनके संन्यास पूर्व जीवन में चचेरे भाई थे, से प्रचुर रूप से प्रभावित हुए थे। वे श्रीरामकृष्ण के साक्षात् शिष्य स्वामी अभेदानन्दजी से भी एक बार मिले थे।

स्वामी गहनानन्दजी ने २२ वर्ष की उम्र में रामकृष्ण संघ के भुवनेश्वर केन्द्र में जनवरी १९३९ में योगदान किया तथा दो महीनों के उपरान्त रामकृष्ण संघ के तत्कालीन अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी विरजानन्द जी महाराज से मंत्र दीक्षा ली। स्वामी विरजानन्द जी महाराज ने १९४४ ई० में उन्हें ब्रह्मचर्य दीक्षा दी एवं उनको नया नाम प्रदान किया–ब्रह्मचारी अमृत चैतन्य। १९४८ में उन्होंने ही उन्हें संन्यास दीक्षा दी और नाम दिया–गहनानन्द।

भुवनेश्वर में उन्होंने स्वामी निर्वाणानन्द जी (जो कालान्तर में संघ के उपाध्यक्ष हुए) के प्रेरक नेतृत्व में कार्य किया। उन्हें स्वामी शंकरानन्द जी महाराज (जो कालान्तर में संघ के सातवें अध्यक्ष हुए) तथा स्वामी विवेकानन्द के शिष्य एवं संघ के एक उपाध्यक्ष स्वामी अचलानन्द जी महाराज की सेवा करने के अवसर भी प्राप्त हुए थे जब उन लोगों ने भुवनेश्वर की यात्रा की थी। सन् १९४२ से १९५२ तक अद्वैत आश्रम, मायावती की कोलकाता शाखा में कार्य किया। इस दस वर्षो की अवधि में वे दो बार हिमालय स्थित मायावती गये जहाँ एकान्त में रहकर उन्होंने स्वाध्याय एवं साधना की।

१९५३ से १९५८ तक शिलाँग केन्द्र में रहकर उन्होंने स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज के शिष्य स्वामी सौम्यानन्द जी के निर्देशन में कार्य किये। इस अवधि में उन्होंने आसाम में दो बार बाढ़ राहत कार्य का आयोजन किया। १९५८ में ये रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान कोलकाता में सेवार्थ नियुक्त हुए। दीर्घ २७ वर्षो तक वे इस प्रतिष्ठान में कार्यरत रहे–५ वर्षो तक इसके संस्थापक सचिव स्वामी दयानन्दजी के प्रेरक एवं कुशल निर्देशन में सह सचिव के रूप में तथा २२ वर्षो तक इसके सचिव के रूप में १९८५ ई० तक। अपने कार्य काल में उन्होंने सेवा प्रतिष्ठान का बहुमुखी और चरम विकास कर दिया। इससे अधिकाधिक गरीबों के विभिन्न प्रकार के रोगों की कुशलता और सफलता पूर्वक चिकित्सा होने लगी। इसी अवधि में उन्होंने सुदूर के 30 गाँवों में चलचिकिसालय के द्वारा गरीबों की चिकित्सा-व्यवस्था शुरू की। प्रति वर्ष शल्य-चिकित्सा शिविरों तथा प्रति वर्ष गंगा सागर मेला के यात्रियों के लिए चिकित्सा-राहत शिविर का आयोजन किया जाने लगा। उन्होंने १९७१ के बंग्लादश युद्ध के दौरान शरणार्थियों के लिए भी चिकित्सा प्रदान करने में अहम् भूमिका निभायी।

स्वामी गहनानन्द जी १९६५ में रामकृष्ण मठ के न्यासी तथा रामकृष्ण मिशन की प्रबन्ध समिति के सदस्य चुने गये। १९७९ में इन दोनों संगठनों के वे सहायक सचिव नियुक्त किये गये। इसके बावजूद १९८५ तक उन्होंने सेवा प्रतिष्ठान का दायित्व संभाले रखा। १९८८ ई० में वे मठ एवं मिशन के महासचिव नियुक्त हुए। इस पद पर वे १९९२ तक रहे। इसी वर्ष वे रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष पद पर आसीन हुए एवं साथ ही रामकृष्ण मठ (योगोद्यान) कांकुड़गाछी के अध्यक्ष भी बने। इस पद पर रहते हुए उन्होंने देश के विभिन्न भागों में स्थित मठ-मिशन के केन्द्रों तथा अनेक प्राइवेट (स्वतंत्र) केन्द्रों का भी भ्रमण किया। १९९३ ई० में उन्होंने विश्वधर्म सभा के शताब्दी वर्ष में रामकृष्ण संघ के प्रतिनिधि के रूप में शिकागो में भाग लिया जिसमें समग्र विश्व के ६,५०० लोगों ने भाग लिया था। इस अवसर पर उन्होंने अमेरिका और कनाडा स्थित मिशन के विभिन्न केन्द्रों का भ्रमण किया। उन्होंने इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्विट्जर लैण्ड, हॉलैण्ड, रूस, आस्ट्रेलिया, जापान, म्यांमार, श्रीलंका, बंग्लादेश, सिंगापुर, मलेशिया तथा मॉरिशस की भी विभिन्न अवसरों पर यात्रा की। रामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम, छपरा में भी उनका दो बार शुभागमन हुआ।

इन सभी स्थानों पर स्वामी गहनानन्दजी ने श्रीरामकृष्ण माँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द के भावादर्शो का व्यापक प्रचार-प्रसार किया।

हमें पूरी आशा और विश्वास है कि उनके कार्यकाल में उनके कुशल निर्देशन एवं योग्य नेतृत्व में रामकृष्ण संघ के विभिन्न क्रियाकलापों का तीव्र विकास एवं प्रखर प्रसार हो सकेगा। ❑

# मार्ग-दर्शन

–स्वामी भूतेशानन्द
–संकलक : स्वामी जितेन्द्रानन्द

[बेलुड़ मठ के कतिपय साधु-ब्रह्मचारियों के प्रश्नों के उत्तर-स्वरूप परमपूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने जो सदुपदेश दिये थे उन्हीं का संकलन यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस संकलन के अधिकांश प्रश्नोत्तर बंग-भाषा में हुए थे।]

**प्रश्न**–महाराज, क्या कर्मयोग का मतलब बहुत कार्य करना है ?

**महाराज**–नहीं, ऐसा नहीं है। हम प्रतिक्षण कार्य कर रहे हैं। लेकिन कर्म, कैसे करना चाहिए, हम नहीं जानते। यदि हम अनासक्त भाव से सभी कर्म करते जायँ तो धीरे-धीरे चित्तशुद्धि हो जाती है और साधक भगवान से मिलकर एक हो जाता है। चित्तशुद्धि हुए बिना भगवानलाभ सम्भव नहीं है। प्रारम्भ में कर्मयोग बड़ा ही सरल है, क्योंकि वह (कर्म) प्रतिक्षण किया जाता है; बस आवश्यकता है अनासक्त होने की।

**प्रश्न**–महाराज, सत्-असत् चिन्तन या इष्ट-मन्त्र जप इनमें से किसका निरन्तर अभ्यास करना चाहिये ?

**महाराज**–जिस समय जो भाव घनीभूत हों उस समय वही करना चाहिये। भाव से मेरा मतलब स्थायी भाव से है।

**प्रश्न**–महाराज, अर्थ-सहित मन्त्र जप करने का क्या अर्थ है ?

**महाराज**–केवल मन्त्रजप करने से तो वह केवल यन्त्रवत् कार्य-मात्र होगा। मन्त्र के साथ अर्थ चिन्तन करने से धीरे-धीरे मन उपास्य देवता में स्थिर होता है और उनमें अनुराग पैदा होता है।

**प्रश्न**–महाराज, श्रद्धा कैसे उत्पन्न हो ?

**महाराज**–गुरु और शास्त्र वाक्य में विश्वास रखने से श्रद्धा उत्पन्न होती है। शास्त्र कहता है–तुम शरीर नहीं, इन्द्रिय नहीं, मन नहीं, चैतन्य स्वरूप आत्मा हो। लेकिन क्या हमारा इस पर विश्वास होता है ? विश्वास होते ही आत्मा स्वप्रकाशित होता है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञ पुरुष कहते हैं–तुम ब्रह्म हो। लेकिन हमें विश्वास नहीं होता है। विश्वास होने पर उसी क्षण ब्रह्म की अनुभूति होने लगती है।

उपनिषद् में एक कथा आती है। शिष्य कहता है कि विश्वास नहीं होता। गुरु बोलते है–१२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करो। शिष्य पुनः कहता है विश्वास नहीं होता। गुरु पुनः १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने को कहते हैं। इसी प्रकार कई बार ब्रह्मचर्य पालन करने को भेजते हैं। कठोपनिषद् में क्या है ? नचिकेता को श्रद्धा हुई थी। 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'। श्रद्धा का मतलब है जैसे सुना विश्वास कर लिया।

**प्रश्न**–वैराग्य को किस प्रकार जगाये रखें ?

**महाराज**–सदा असत् विचारों को सत् विचारों से दूर रखकर। जब भी मन में बुरे विचार आवें तो सच्चिदानन्द द्वारा उन्हें दूर हटाना। सदा सत् विचारों का चिन्तन करना जिससे असत् विचार आने ही न पावें।

**प्रश्न**–महाराज, जप में मन कैसे लगे ?

**महाराज**–लगातार अभ्यास से।

**प्रश्न**–महाराज, अजपा-जप के समय भी सदा नामी का चिन्तन होता रहता है ?

**महाराज**–हाँ, अजपा का मतलब प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ मन्त्र का जप होता है और साथ ही साथ प्रतिपाद्य देवता का चिन्तन भी होता है। लेकिन यह बड़ी कठिन बात है। सब समय ईश्वर चिन्तन करना कठिन है। इसीलिये कर्मयोग का सहारा लिया जाना ठीक है।

**प्रश्न**–महाराज, ठाकुर जी कहते हैं–अद्वैतज्ञान अन्तिम बात है।

**महाराज**–अन्तिम बात का मतलब निराकार दर्शन के बाद रूप तथा चित्तवृत्तियाँ नहीं रह पातीं। सबका लय हो जाता है। उसके बाद कुछ शेष नहीं बचता है। इसका मतलब यह नहीं है कि अद्वैत-ज्ञान सबसे अच्छा है। अद्वैत, द्वैत विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत-ये सब हमारी मान्यतायें हैं। किसी के द्वारा वहाँ तक पहुँचा जा सकता है। कोई छोटा बड़ा नहीं है। ठाकुर जी कहते हैं–नित्य के बाद लीला, लीला के बाद नित्य। एक वृत्त बना हुआ है। फिर किसको अच्छा और बुरा कहोगे ?

**प्रश्न**–महाराज, जप और प्रार्थना किस प्रकार करें और किसको वरीयता दें।

**महाराज**–जप के साथ-साथ उसका अर्थ तथा आराध्य-देवता का चिन्तन करना चाहिये। प्रार्थना का मतलब यह नहीं है कि हमें ये दो वो दो आदि। प्रार्थना के समय हृदय में ठीक-ठीक अभाव बोध तथा प्रेम होना चाहिये। जप तथा प्रार्थना दोनों ही ठीक है। दोनों ही भगवान के पास जाने के पथ हैं। कुछ लोगों को जप करना अच्छा

लगता है और सरल सहज लगता है तो कुछ को प्रार्थना करना सहज लगता है। दोनों ही ठीक है पर आन्तरिकता से किया जाना चाहिये।

**प्रश्न**—महाराज, Work and worship तथा work is worship. इसका क्या मतलब है ?

**महाराज**—यह स्वामीजी का वाक्य है। हमलोग कामकाज करते हैं और भगवान की पूजा भी करते हैं। लेकिन एक धारणा है जिसमें प्रत्येक कर्म ही पूजा समझकर किया जाता है। लेकिन यह बहुत ही कठिन बात है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास भी कर्म का ही रूप है। सबको भगवान की पूजा समझना कठिन बात है। इसीलिए हमलोग दोनों कर्म और पूजा करते हैं।

**प्रश्न**—महाराज, जप के साथ शास्त्र चिन्तन हो तो ठीक है ?

**महाराज**—नहीं, जप के साथ केवल नामी का ही चिन्तन करना चाहिये। क्या राम का नाम ले रहा हूँ और चिन्ता करूँगा श्याम की ? ऐसे होगा नहीं । जप के समय केवल जप, शास्त्र पाठ के समय केवल शास्त्र पाठ।

**प्रश्न**—महाराज, कभी-कभी दो विचार सामने खड़े होते हैं। परस्पर विरोध होता है, तो किसको मानना चाहिये ?

**महाराज**—विचार करके जो निश्चित हो वही मानना चाहिये। स्वयं विचार करना चाहिये। अन्य किसी पर हर प्रश्न के उत्तर के लिये निर्भर नहीं होना चाहिये। एक बार मैंने सारदानन्द जी महाराज से ऐसा ही प्रश्न किया था। वे बोले, 'क्या सभी प्रश्न के लिये मेरा ही मुख देखोगे ? यदि ऐसा हुआ तो तुम्हारा आत्मविश्वास कैसे बढ़ेगा ? स्वयं खोजो। क्या तुम समझते हो कि मैं सब समय रहूँगा।' तो स्वयं ही विचार करना सीखो। फिर (तुमलोग) कहोगे कि आपने ही प्रश्न पूछने के लिये कहा। तो क्या इसलिये कहा कि मैं उत्तर देने को प्रस्तुत हूँ ? नहीं, इसलिये कि विचार करना प्रारम्भ करो।

**प्रश्न**—ऊँ ह्रीं ऋतं का अर्थ क्या है ?

**महाराज**—ऊँ माने ब्रह्म, ह्रीं माने शक्ति, ऋतं माने सत्य। तुम ही ब्रह्म, तुम ही शक्ति, तुम ही सत्य। ब्रह्म शक्ति अभेद !

**प्रश्न**—महाराज, व्याकुलता क्या है ?

**महाराज**—सब समय भगवान को आकुल होकर चाहना ही व्याकुलता है। व्याकुलता होने पर सब अलोना लगता है। फिर साधक उनको छोड़कर कुछ नहीं चाहता। व्याकुलता कैसी होती है, 'ठाकुर' खुद ही बालक के समान हाथ-पैर पीटकर, रो-रो कर, व्याकुल होकर दिखा देते हैं। यह नाटक नहीं, सच्ची व्याकुलता है। देखकर संशय दूर हो जाता है। हम लोगों को नहीं है तो क्या करेंगे ? किसी पेंड़ में थोड़े ही पड़ी है कि गिर जायेगी और मिल जायेगी।

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृहयते'।

अभ्यास ध्यौर वैराग्य से प्राप्त होगी ।

**प्रश्न**—महाराज, व्याकुलता के लिये साधन प्रयोजन है ?

**महाराज**—हाँ, साधन करते-करते व्याकुलता होगी और तब ही सच्चा साधन भी शुरू होता है।

**प्रश्न**—महाराज, अनेक लोग तपस्या के लिये यहाँ-वहाँ जाते हैं। वह बेलुड़-मठ में रहकर भी कर सकते हैं।

**महाराज**—यदि ऐसा ही है तो तुम घर छोड़कर यहाँ क्यों चले आये ? घर में भी साधना कर सकते थे ? यही तो समझकर कि वहाँ विक्षेप के बहुत से विषय हैं। यहाँ भी वही बात है। भले ही उतने परिमाण में न हो। हम लोगों में भी परस्पर बन्धन है। ठाकुर निर्जनवास की बात बोलते हैं। इसका मतलब भगवान और स्वयं को छोड़कर तीसरा और कोई बीच में न हो। इसीलिये बाहर जाकर तपस्या का प्रयोजन है। लेकिन जानते हो निर्जन क्या होता है ? उत्तरकाशी की बात है। एक जन साधु अपना आसन लेकर घूमते रहे निर्जन की खोज में। यहाँ बैठे, बिघ्न होने पर चल दिये। वहाँ बैठे बिघ्न होने पर चल दिये। इसी प्रकार उनको कहीं निर्जन नहीं मिला। अन्त में वे एक सुन्दर गुफा के पास गये। बहुत शान्त ! सोचे पा गये शान्ति की जगह। थोड़ी देर ध्यान किया था कि फिर आसन लेकर चलते बने। उनको देखकर और एक महात्मा ने पूछा 'बाबा तपस्या करने के लिये आये थे, कहाँ जा रहे हो ?' वह बोला, "शान्ति की जगह खोज रहा था। परन्तु गुफा के मुंह पर कुछ पक्षी कच-कच कर रहे हैं। यहाँ भी शन्ति नहीं।' इसपर आगे वाला महात्मा बोला, 'बाबा पहले अपने मन की कच-कची दूर करो।' अतएव कहीं भी शान्ति नहीं है। मन की ऐसी अवस्था जब तक नहीं आ जाती कि बाहरी-द्रष्टव्य वस्तु से मन में कोई तरंग या विक्षेप न हो, तव तक ठीक-ठीक निर्जनवास नहीं हो सकता। इसीलिये ठाकुर जी साधु-संग और व्याकुल होकर प्रार्थना तथा निर्जनवास पर बार-बार जोर देते हैं। प्रारम्भ में निर्जनवास ठीक नहीं है क्योंकि वहाँ भी मन का संसार चलता ही रहेगा। इसलिये पहले साधन-भजन और साधु-संग द्वारा मन को ऊँचा उठा लेने से निर्जनवास अच्छा है।

**प्रश्न**—महाराज, स्वामीजी ने कहा है कि बेलुड़ मठ में ठाकुरजी का सर्वाधिक प्रकाश है ।

**महाराज**—तो क्या अन्य सब जगह उनका कम प्रकाश है ? जिसके प्रकाश से ही सारा जगत चन्द्र-सूर्य नक्षत्र प्रकाशमान है. उसका क्या कहीं कम या अधिक प्रकाश होगा ? 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'

**प्रश्न**—महाराज, भगवान कहते हैं 'नाहं तिष्ठामि वैकुण्ठे--------।'

**महाराज**—तो क्या बैकुण्ठ भगवान से खाली हो जायेगा ? यह एक और बात है कि किसी अन्य विषय पर जोर देने के लिये ऐसा कहा गया है। जो भगवान को सर्वत्र देखता है, सर्वभूतों में देखता है उसके लिये तीर्थ आदि कुछ भी नहीं हैं। उसके लिये कोई स्थान माहात्म्य नहीं है। तो क्या स्वामीजी ने जो कहा वह गलत है ? नहीं, हम लोगों की भेद बुद्धि है। हम लोगों की दृष्टि से हमारे लिये उनका यहाँ विशेष प्रकाश है। उनकी दृष्टि से नहीं। उनकी दृष्टि से सर्वत्र ही उनका एक ही प्रकाश है। एक बार एक साधु को ब्रह्म की महिमा बताते हुए ( महामण्डलेश्वर ) धनराजगिरी का आँख-मुँह लाल हो गया। वे बोलने लगे—सब ओतप्रोत है, सब भरा है, सब भरा है !

**प्रश्न**—महाराज, ठाकुर जी की भावावस्था और भाव मुख में अन्तर है क्या ? कौन सी ऊँची अवस्था है ?

**महाराज**—हाँ अन्तर है। भावावस्था में जगत को जैसा साधारण आदमी देखता है वैसा वे नहीं देखते। भावमुख अवस्था वह है जहाँ से सम्पूर्ण भाव की उत्पत्ति हो वहाँ अवस्थान करना। वहाँ रहने से द्वैत और अद्वैत दोनों का समान ज्ञान रहता है। भाव मुख अवस्था ऊँची अवस्था है।

**प्रश्न**—महाराज, सत्यनिष्ठा क्या है ?

**महाराज**—सर्वनाश होने पर भी सत्य को न छोड़ना ही सत्यनिष्ठा है। किसी भी प्रकार समझौता नहीं किया जा सकता। यह नहीं कि 'अश्वत्थामा हतो इति नरो वा कुञ्जरो।' एक बार मैं एक मंदिर में एक ब्रह्मचारी के रूप में रहता था। ठाकुर सेवा करता था। घाट पर एक रुपया पड़ा हुआ था। ज्वार आया हुआ था। मैंने सोचा कि यह पैसा लेकर ठाकुर जी की सेवा में लगा दूँ। फिर सोचा यह तो मिथ्या होगा। जिसका रुपया गिरा हो यदि वह खोजता हुआ आवे तो ? यह सोच कर मैं जल लेकर चला गया। फिर सीढ़ी के ऊपर मंदिर से बाहर आकर देखा। रुपया नहीं है। मैंने सोचा क्या यह परीक्षा है ? यह तो रही एक रुपये की बात वहीं पर एक सौ रहता तो मैं क्या करता ? एक बार School Final में मैं संस्कृत की परीक्षा दे रहा था। एक प्रश्न में मैंने 'ल्यप्' उत्तर लिखा था। दो अन्य लड़के बात कर रहे थे उनसे सुना वह शब्द अव्यय था। तो सोचा सत्य ही तो वह अव्यय है। फिर सोचा सही लिख दूँ। तुरन्त विचार आया कि नहीं यह कार्य मिथ्या होगा। फिर अपना उत्तर काट दिया। यह तो एक अंक रहा यदि अधिक अंक की बात होती तो क्या करता ?

**प्रश्न**—महाराज जो आगे गलती उत्तर लिखे थे वह मिथ्या नहीं है ?

**महाराज**—नहीं, वह मिथ्या नहीं वह भूल है। सत्य और मिथ्या में बड़ा अन्तर है। वह न जानते हुए हो रहा था जबकि मिथ्या जानकर बोलते हैं।

**प्रश्न**—महाराज, हमलोग कभी किसी को वचन देते हैं कि अमुक काम करूँगा लेकिन यदि किसी अन्य कार्य में फँसकर वह नहीं कर पाता हूँ तो वह मिथ्या ही हुआ ?

**महाराज**—विवशता वश वा असमर्थता वश यदि वह नहीं कर पाते तो दोष नहीं होगा। जान बूझकर स्वार्थवश यदि वचन पूरा नहीं करते तो दोष लगेगा। सत्यनिष्ठा का अर्थ है सर्वनाश होने पर भी सत्य बोलना।

**प्रश्न**—महाराज, जप के समय नींद क्यों आती है ? इसे रोकने का क्या उपाय है ?

**महाराज**—नींद आने के दो कारण हैं—प्रथम मन का महातमोगुणाच्छन्न होना। दूसरा है—शरीर का अधिक थका होना। जप के समय मन को विषयों से हटा लेते हो जिसमें वह गमन करता रहता है: अतः इन्द्रियों को बहुत आराम मिलता है। और सतर्कता की कमी होने से नींद आ जाती है। इस समय यदि सतर्क रहो तो नींद नहीं आयेगी। मन सदा भगवन्नाम करेगा। जप के लिये बैठने पर स्वामीजी कहते हैं कि मन को स्वतंत्र छोड़ दो उसको देखो कहाँ जाता है ? क्या करता है ? ऐसा करने से धीरे-धीरे मन शान्त हो जायेगा, विक्षेप-रहित हो जायेगा। उसके बाद जप करना आरम्भ कर देना चाहिये। अन्यथा मन नाना विषयों में घूमने लगेगा और शान्त होने पर निद्रा आ जायेगी।

और यदि शरीर थका हुआ है, तो कुछ देर आराम करने के बाद ही जप करना ठीक है। अन्यथा उससे कोई काम नहीं होता। यन्त्रवत् कभी जप हुआ, मन सोया है। इससे तो अच्छा है विश्राम करने के बाद अल्प समय ही सजग होकर जप किया जाय, यन्त्रवत् नहीं। जपके समय मालूम होना चाहिए कि मैं भगवान का नाम ले रहा हूँ। अन्यथा वह किसी काम का नहीं होता।

**प्रश्न**—महाराज, नींद आने से पादचारण कर सकते हैं ?

**महाराज**—पादचारण करने से फिर ध्यान नहीं होगा। ध्यान के समय सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पूर्ण आराम में रहती हैं ? उस समय उनके द्वारा कोई कर्म ही सम्भव नहीं है

क्योंकि मन उनसे अलग रहता है। ऐसी दशा में पादचारण सम्भव नहीं है। अतः अभ्यास से धीरे-धीरे नींद नहीं आयेगी। ये सब साधना के विघ्न हैं। यह सोचने से कि पास के घर में सोना पड़ा है, चोर को क्या फिर नींद आयेगी ? ठाकुर अधिक खट-पट पर जोर नहीं देते, लेकिन कहते हैं त्याग के बिना कुछ भी नहीं होगा। एक ही बात में आग लगा देते हैं। त्याग क्या साधारण बात है ? ठाकुर अधिक तर्क-वितर्क की बात नहीं बोलते। एक बार एक व्यक्ति को ठाकुर बोले, 'देखो यदि विचार करो कि ईश्वर नहीं हैं तो कुछ भी नहीं पाओगे। यदि मैं विचार करूँ कि ईश्वर हैं तो ईश्वर नहीं होने से मैं भी नहीं पाऊँगा। लेकिन होने पर मेरे ईश्वर के पाने की सम्भावना है। परन्तु तुम तो कुछ भी नहीं पाओगे। तो कौन-सा विचार करना अच्छा है ? ईश्वर हैं या नहीं ? पगले ठाकुर ने कुछ भी नहीं पढ़ा। फिर भी कितनी विलक्षण बुद्धि ! न्याय की भाषा ! परन्तु वे और भी कहते हैं कि मैंने पढ़ा कुछ नहीं, लेकिन सुना बहुत हूँ। अधिक तर्क करने से क्या होगा ? फिर भी ठाकुर कहते हैं शुद्ध बुद्धि द्वारा गोचर हैं। यह सब बातें मैं सहज-भाव से समझा रहा हूँ। तुमलोग यदि किसी पण्डित के पास जाओगे तो वह कुछ और व्याख्या करेगा। एक वचनामृत में ही कितनी चीजें पड़ी हुई हैं। पढ़ने से देखोगे सभी प्रश्नों का समाधान पड़ा है।

अन्त में पूज्यवाद महाराज बोले—अरे, दिन-चला जा रहा है। इतनी Protected life और कहाँ पाओगे ? जीवन को तैयार कर लो न ?

**प्रश्न**—महाराज, वासना का मूल क्या है ?

**महाराज**—अपनी अपूर्णता का बोध। जब हम अपूर्णता का अनुभव करते हैं तो उसको पाने की चेष्टा करते हैं। यदि अपूर्णता ही न हो, तो क्या चाहूँगा ? तो फिर कोई वासना नहीं रहेगी। ठाकुर कहते हैं ईश्वर-प्रेम होने से वासना दूर हो जाती है।

**प्रश्न**—महाराज, जब हमलोग घर छोड़कर आते हैं तो वैराग्य बहुत प्रबल होता है। और भगवान को पाने की उत्कण्ठा भी अधिक होती है। लेकिन समय के साथ यह कम क्यों हो जा रहा है ?

**महाराज**—सभी साधकों के जीवन में ऐसा होता है। ठाकुरजी कहते हैं कि जब नयी शादी होती है तो वर-वधू में जो नवानुराग होता है वह दीर्घकाल तक नहीं रहता। उसमें अनेक प्रकार की अस्वाभाविकता भी होती है। वह सब दूर होकर स्वाभाविक (Natural) प्रेम बच जाता है। उसी प्रकार सभी साधकों के जीवन में चढ़ाई और उतराई होती है। सब समय मन शिखर पर चढ़ा रहेगा ऐसी बात नहीं है। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि मन मरुभूमि के समान नीरस हो गया है। इसका मतलब यह नहीं कि अवनति हो गयी है। यह भी साधक अवस्था की एक दशा है। नीरस लगने पर भी साधना को नहीं छोड़ना चाहिये। धीरे-धीरे सरस हो जायगी। जब ऐसा प्रतीत होने लगे कि भगवान नहीं मिले और इस कारण मेरी काफी क्षति हो रही है। सब समय यह मन का भाव होने लगे। सब समय मन सोचे कि भगवान नहीं मिले और दुःखी हो तो ठाकुर कहते हैं कि इसे अरुणोदय समझो। अब सूर्य निकलने में देरी नहीं है। जब तक यह अवस्था नहीं होती तो समझो कि सूर्य निकलने में बहुत देरी है। इसके लिये ठाकुर जी कहते हैं-हरि नाम करो मेरे भाई, तेरी बनत बनत बनि जाई॥ सब समय लगे रहने से अवश्य ही उसका फल होगा। ठाकुर जी कहते हैं कि एक बूँद आँसू भी भगवान के लिये बहाया है तो वह व्यर्थ नहीं होगा।

**प्रश्न**—महाराज, भाव के अनुसार अलग-अलग अनुभूति होती है क्या ?

**महाराज**—कार्य के अनुसार भाव होता है और भाव के अनुसार अनुभूति।

**प्रश्न**—महाराज, कहा गया है कि चाहे किसी भाव से भी क्यों न साधना की जाय एक ही भगवान की प्राप्ति होती है। तो प्रत्येक की अलग-अलग अनुभूति कैसे हुई ?

**महाराज**—होने दो न ! पिता रूप भगवान का दर्शन हो अथवा माँ रूप। है तो भगवान का ही रूप न ? तत्वतः तो भगवान ही हैं न ? साधारण मानव का एक भाव की साधना करते-करते ही जीवन चला जाता है। ठाकुर जी कहते हैं कि चीनी का एक कण खाने से पेट भर जाता है। फिर सब जानने की क्या जरूरत ? ठाकुर जी तो आचार्य थे इसलिये लोकशिक्षा के लिये सभी भाव की साधना की। साधारण व्यक्ति के लिये एक भाव से भगवान लाभ ही पर्याप्त है।

**प्रश्न**—महाराज, रामकृष्ण-लोक का क्या अर्थ है ?

**महाराज**—रामकृष्ण-लोक माने रामकृष्ण एक भाव। रामकृष्ण लोक गमन माने रामकृष्ण भाव के साथ मुक्त हो जाना और उसका आनन्द पाना। लोक माने पृथ्वी, चन्द्र सूर्य नहीं। चन्द्र पर कोई जीवन ही नहीं रेगिस्तान है। सूर्य पर पहुँचने के बहुत पहले हम ही जलकर भस्म हो जायेंगे। इसलिये यह सब लोक कहने का अर्थ एक-एक प्रकार का भाव।

**प्रश्न**—महाराज, षट्-दल, अष्ट-दल, द्वादश-दल, शतदल, सहस्रदल आदि कमल ये सब जागतिक रूप में मिलते हैं अथवा साधना द्वारा देखे जाते हैं।

**महाराज**–ये पद्म जागतिक रूप में नहीं होते। न ही कल्पता में भी होते हैं। ये योगी द्वारा गम्य हैं।

**प्रश्न**–महाराज, ठाकुर जी राजा महाराज को शतदल और स्वामीजी को सहस्रदल कमल पर बैठे देखे। तो क्या ये कमल शक्ति के मानदण्ड हैं ?

**महाराज**–ठाकुरजी, स्वामीजी की विशेषता बताने और उन्हें सबके ऊपर प्रतिष्ठित करने के लिये बहुत-कुछ कहते हुए नहीं थकते थे।

**प्रश्न**–महाराज, क्या खाने के बाद तुरन्त जप करने से हानि होती है ?

**महाराज**–हाँ, बहुत हानि होती है। इसका वैज्ञानिक कारण सुनो। खाने के बाद पेट की तरफ रक्त संचार बढ़ जाता है और मिर की तरफ कम रहता है। यदि ऐसे समय जप किया जाय तो सिर में रक्त की अल्पता होगी और कार्य करने से मस्तिष्क दुर्बल पड़ जायेगा।

**प्रश्न**–महाराज ठाकुरजी 'हरि से लगे रहो रे भाई--' यह भाव पसन्द नहीं करते थे, क्यों ?

**महाराज**–ठाकुरजी भगवान के लिये रोने को कहते हैं। बालक जैसा हाथ पैर पीटकर रोने लगते हैं। एकदम वास्तविक ! थोड़ी भी बनावट नहीं। भगवान के प्रति व्याकुलता का ज्वलन्त उदाहरण ! लेकिन हमलोग क्या उनके लिये रोते हैं ?

**प्रश्न**–महाराज, स्वामीजी ने कहा है कि रोना स्नायुविक दुर्बलता है।

**महाराज**–स्वामीजी क्या कम रोये हैं ? रोने के अलावा अन्य कोई रास्ता नहीं है। क्या किसी ने आजतक हँसकर भगवान को पाया है ? सभी को रोना पड़ता है। तब माँ भात की हाँड़ी छोड़ झट बच्चे को गोद में उठाती है। अन्यथा कौन ध्यान देता है ?

**प्रश्न**–महाराज, संन्यास की अवस्था क्या है ?

**महाराज**–संन्यास की अवस्था अनिर्वचनीय है। ब्रह्म के समान। इसी अवस्था को व्यक्त करने के लिये गीता में स्थितप्रज्ञ का लक्षण बताया गया है। हम लोग संन्यासी नहीं हैं, संन्यासी होने का प्रयास कर रहे हैं। अपने को संन्यासी कहना, अभिमान को व्यक्त करता है, क्योंकि आनुष्ठानिक संन्यास के बावजूद हम लोगों में आन्तरिक संन्यास नहीं हुआ है। तो भी 'संन्यास' शब्द का अर्थ Dilute रूप में लेकर हम लोग अपने को संन्यासी कहते हैं। वस्तुतः संन्यासी नहीं हैं। संन्यासी होने के प्रयासी हैं।

संन्यास दो तरह का होता है–एक संन्यास आश्रम, दूसरा ठीक-ठीक आन्तरिक संन्यास। संन्यास आश्रम संन्यास नहीं है क्योंकि इसमें विधि निषेध है। जबकि 'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधि को निषेधः।'

कुछ दिनों से मठ में माँ दुर्गा की पूजा हो रही थी। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया :

**प्रश्न**–महाराज, माँ को वस्त्र-आभूषण दिया गया, सर्वाङ्ग सम्पन्न किया गया, प्राणप्रतिष्ठा भी की गयी। और कौन सी चीज माँ को देनी बाकी रह गयी जिसको देने से माँ हम लोगों की तरह चलने लगतीं ?

**महाराज**–हृदय देने से। हृदय दे दो, माँ चलने लगेंगी। लेकिन हृदय कौन देता है ? सब चीजें देते हैं, केवल हृदय नहीं देते। तो क्या होगा ? ये सब चीजें न देकर केवल हृदय मात्र देने से भी माँ चलेंगी। माँ की ही चीज माँ को देते हो, अपना क्या देते हो ? अपना हृदय दे दो, माँ चलेंगी। हमलोग हृदय नहीं दे पाते। इसलिये माँ की चीज ही माँ को देकर अपना चित्त शुद्ध करते हैं। चित्त शुद्ध होने पर माँ को हृदय दे पायेंगे।

ठाकुर मन मुख एक करने की बात कहते हैं। देखने में, कहने में बहुत आसान लगती है। लेकिन बहुत कठिन है। हम लोग कहने में कुछ कहते हैं, कार्य में कुछ करते हैं, भाव कुछ और होता है। यह मन मुख एक नहीं हुआ। माँ को सर्वस्व अर्पण करते हैं सबकुछ अपने पास ही रहता है। यदि मन मुँह एक हो तो सर्वस्व अर्पण के बाद कुछ भी अपना नहीं रहेगा।

**प्रश्न**–महाराज, हृदय भी तो माँ का ही है ?

**महाराज**–जबतक 'मैं' बुद्धि है तब तक हृदय उनका नहीं है। यह उनसे अलग है। और जब हृदय उनका हो जायेगा तो फिर दिया नहीं जा सकता। लेकिन जब तक हृदय शुद्ध नहीं है, वह माँ का नहीं हो सकता।

**प्रश्न**–महाराज, जब हम हृदय नहीं दे सकते तो क्या करें ?

**महाराज**–क्या करोगे ? बैठे रहने से कुछ भी नहीं होगा। तुम्हें बराबर चेष्टा करनी होगी धीरे-धीरे चित्त शुद्ध हो जायेगा। तब हृदय दे पाओगे। लेकिन विश्वास चाहिये। ठाकुरजी कहते हैं, 'क्या ? तीन बार राम नाम कराया ? एक बार राम-नाम लेने से कोटि पाप कट जाते हैं और तुम तीन बार ?'

**प्रश्न**–महाराज, भक्त लोगों के साथ हमारा कैसा बर्ताव होना चाहिये।

**महाराज**–यह सोचोगे कि वे भी भगवान को पाने का प्रयास कर रहे हैं। अन्तर इतना है कि वे संसार में रहकर प्रयास कर रहे हैं और तुम संसार से बाहर रहकर। समझा ? एक भक्त ने एक ब्रह्मचारी को कुर्सी लाने को कहा तो उसको बात लग गयी कि भक्त उसका अपमान कर रहा है। उसने बाबूराम महाराज को पत्र लिखा तो बाबूराम महाराज ने जवाब दिया 'देखो तुम्हारे ठाकुर तो

मान यश के लिये आये नहीं। एक आदमी ने ठाकुर को कहा, ''ऐ माली, फूल तोड़कर दो।' ठाकुर ने बिना कुछ कहे। फूल तोड़कर दे दिये।' यदि वे कहते, 'क्या--- मैं अमुक ?' लेकिन कुछ नहीं कहा । और तो और यदि ब्रह्मचारी ने प्रणाम नहीं किया तो साधु सोचते हैं ऐसी बात ? तुम्हें दूसरों को, चाहे बड़े हों या छोटे हों, सम्मान देना चाहिये चाहे उनसे मान या अपमान ही क्यों न मिले।

**प्रश्न**—महाराज, शुकुल महाराज ( स्वामी आत्मानन्द ) कहते हैं कि आसन साधु को बचाता है। इसका क्या तात्पर्य है ?

**महाराज**—Traditional ( परम्परागत ) साधु लोगों के बीच एक कहावत है कि साधु को शाम के समय अपने आसन पर आ जाना चाहिये। अर्थात् जिस स्थान पर रहते हैं, वहाँ चला आना चाहिये। अर्थात् जहाँ साधना करते हैं वहीं, उसी साधन स्थल पर पहुँच जाना चाहिये।

**प्रश्न**—महाराज, सुषुप्ति और निर्विकल्प समाधि में क्या अन्तर है ?

**महाराज**—आकाश-पाताल में जितना अन्तर है। ( सभी जोरो से हँसते हैं ) सुषुप्ति में मन का लय होता है लेकिन अज्ञान में। सुषुप्ति में बीज ( अज्ञान ) बचा रहता है। जबकि निर्विकल्प समाधि में भी मन का लय होता है। लेकिन इसमें बीज नहीं रहता, अज्ञान नहीं रहता। मन से अज्ञान का आरोप हट जाता है। निर्विकल्प समाधि में मन का लय ज्ञान में होता है।

तीन अवस्थाओं में मन का लय होता है—सुषुप्ति, मूर्च्छा और निर्विकल्प समाधि। सुषुप्ति में मन स्वभावतः अज्ञान में लय होता है। मूर्च्छा में हठात् किसी कारण वश मन अज्ञान में लय हो जाता है। लेकिन निर्विकल्प समाधि बहुत साधना और सत् जीवन यापन के बाद होती है। इसमें मन का लय होता है।

**प्रश्न**—महाराज L.S.D. की गोली, heroin आदि खाने पर भी मन का लय हो जाता है या मूर्च्छा हो जाती है ?

**महाराज**—नशीली दवाओं के खाने से मूर्च्छा नहीं होती बल्कि मन विकृत हो जाता है।

मन का सम्पूर्ण नाश तो ज्ञान होने पर ही होता है। अद्वैत ज्ञान द्वारा ही मन का सम्पूर्ण नाश होता है। प्रश्न उठता है, मन का सम्पूर्ण नाश होने पर फिर शरीर की क्रिया कैसे चलती है ? तो कहते हैं अद्वैत ज्ञान होने पर अविद्या लेश रह जाती है। उसी के कारण मन कार्यशील होता है। तो प्रश्न उठता है कि क्या अविद्या सम्पूर्णरूप से दूर होती ही नहीं ? उत्तर में कहते हैं—फिटकिरी को गंदे पानी में डालने से जल शुद्ध हो जाता है लेकिन फिटकिरी का क्या होता है ? फिटकिरी भी नहीं रह जाती। उसी प्रकार अद्वैत ज्ञान होने पर अविद्या स्वयं नहीं रहती। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जाते हैं। प्रमाणों में भी दोष होता है। फिर पूछा जाता है कि, फिटकिरी गलकर जल में मिल गयी। उसका भौतिक रूप बदल गया। नमक समुद्र में जाने पर गल गया उसका आकार बदल गया लेकिन स्वाद के रूप में तो जल में विद्यमान ही है। अतः प्रमाण द्वारा अविद्यालेश को हटाया नहीं जा सकता। तो फिर प्रश्न उठता है कि तब तो अविद्या भी कभी नष्ट नहीं होती ? फिर उत्तर में कहते हैं कि 'प्रत्यक्ष, युक्ति से बलवान' होता है।' यह देखा गया है कि अद्वैत ज्ञान होने पर अविद्या नहीं रहती। शंकर ( आचार्य शंकर ) यह नहीं कहते कि अविद्या का नाश हो जाता है बल्कि अविद्या रहती ही नहीं ? अविद्या मिथ्या है। अतः उसके नाश होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। ज्ञान होने पर अविद्या नहीं रहती।

**प्रश्न**—महाराज, चैतन्य शक्ति और प्राणशक्ति में क्या अन्तर है ?

**महाराज**—शरीर के अन्दर मन-इन्द्रियों में जिससे क्रिया होती है उसे प्राणशक्ति कहते हैं। मन भी एक इन्द्रिय है इसमें जो क्रिया होती है वह प्राणशक्ति के द्वारा ही होती है। मन को देखने अथवा जानने की जो शक्ति है वह चैतन्य शक्ति है। मन तो एक इन्द्रिय है। इसके द्वारा Indipendent रूप से जानने की क्रिया नहीं हो सकती। साक्षी चैतन्य है। इसलिये जानने का कार्य चैतन्य द्वारा ही होता है। अतः जानने की शक्ति चैतन्य शक्ति है।

**प्रश्न**—महाराज, बुद्धि द्वारा भी तो जाना जाता है ?

**महाराज**—बुद्धि मन की ही एक वृत्ति है। अतः यह भी इन्द्रिय है। मन-बुद्धि अन्तःकरण की इन्द्रियाँ हैं ? बुद्धि के द्वारा जो जानने की क्रिया होती है वह भी चैतन्य शक्ति के द्वारा ही होती है। मन तो नश्वर है अतएव इसके द्वारा जानने की क्रिया नहीं हो सकती।

**प्रश्न**—महाराज, मन का नाश कब होता है ?

**महाराज**—तीन अवस्थाओं में मन का Function बंद रहता है। वे हैं—सुषुप्ति, मूर्च्छा और समाधि। इन तीनों अवस्थाओं में मन का लय हो जाता है अतः हम कह सकते हैं कि इन तीन अवस्थाओं में मन का नाश हो जाता है। Anaesthesia एक artificial मूर्च्छा ही है।

**प्रश्न**—महाराज, सहस्रार में गुरु का ध्यान करने के लिये क्यों कहते हैं ?

**महाराज**—सहस्रार क्या है जानते हो ?

**प्रश्नकर्त्ता**—नहीं।

**महाराज**—इसीलिये मैं, सिर में श्वेत कमल पर गुरु बैठे हैं—ऐसा ध्यान करने को कहता हूँ। कारण सहस्रार योगी लोगों द्वारा ध्यानगम्य है। सहस्रदल पद्म होता है, यह कौन जानता है ? केवल योगी लोग ही जान सकते हैं। इसलिये साधारण लोगों के लिये सिर में श्वेत कमल पर बैठे हुए गुरु का ध्यान करने को कहता हूँ। श्वेत पवित्रता का प्रतीक है। और कमल भक्ति का प्रतीक है।

**प्रश्न**—महाराज, स्वप्न में यदि कोई श्रीकृष्ण को देखे तो क्या उसको भगवान दर्शन हुआ है ?

**महाराज**—स्वप्न से भगवान श्रीकृष्ण का क्या लेना-देना ? वह तो तुम देखते हो । स्वप्न में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं दिखायी देती जिसे कभी तुमने देखा या सुना न हो। केवल उनका relation ( सम्बन्ध ) गड़बड़ हो जाता है। जैसे मैंने सोना देखा है और पहाड़ भी। लेकिन स्वप्न में देखता हूँ सोने का पहाड़। केवल सम्बन्ध उलट-पलट हो गया।

**प्रश्न**—महाराज, ब्रह्मज्ञान से आनन्द होता है क्या ?

**महाराज**—कौन कहता है कि ब्रह्मज्ञान से आनन्द होता है ? ब्रह्मज्ञान तो आनन्द स्वरूप ही है। समाधि में क्या होता है यह जाना नहीं जाता। समाधि से नीचे आने पर उसकी स्मृति बनी रहती है। उससे ही आनन्द होता है।

**प्रश्न**—महाराज faith ( विश्वास ) और conviction ( दृढ़ धारणा या सम्प्रत्यय ) में क्या अन्तर है ?

**महाराज**—विश्वास होने पर संदेह का थोड़ा सा स्थान रहता है। लेकिन conviction होने पर संदेह दूर हो जाता है, ज्ञान हो जाता है। विश्वास ही जब दृढ़ हो जाता है तो उसको conviction कहते हैं। बंगला भाषा में इसको दृढ़ विश्वास कहते हैं। यह विश्वास की ही चरम अवस्था है।

**प्रश्न**—महाराज, राजा महाराज कहते हैं कि भगवान लाभ होने पर जगत उसके सामने transformed हो जाता है। इसका क्या अर्थ है ?

**महाराज**—Transformed का अर्थ है कि जगत, जगत के रूप में नहीं बल्कि पूरा जगत भगवान से ओत-प्रोत दिखायी देगा। ओत-प्रोत का मतलब इस प्रकार समझो जैसे कपड़े में सूते का ताना और बाना रहता है। यहाँ कपड़ा सूते से ओत-प्रोत है। तब भगवान ही सर्वत्र दिखायी देते हैं।

**प्रश्न**—महाराज, हमलोग भी तो सोचते हैं कि भगवान सर्वव्याप्त हैं ?

**महाराज**—नहीं, हम सोचते नहीं, कल्पना करते हैं। धीरे-धीरे यही कल्पना परिपक्व होकर दृढ़ हो जाती है। तो हमें सब समय यही अनुभूति होती है कि भगवान सर्वत्र हैं।

**प्रश्न**—महाराज, क्या सभी कल्पना सत्य होती है ?

**महाराज**—नहीं, जो कल्पना सत्य विषय के सम्बन्ध में होती है, वही सत्य होती है। भगवान सत्य विषय हैं अतः उनके विषय में की गयी कल्पना सत्य होगी। असत्य कल्पना उसी प्रकार सत्य नहीं होती जैसे कि घोड़े का अण्डा।

**प्रश्न**—महाराज, हमारा ठाकुर से प्रेम क्यों नहीं होता ?

**महाराज**—इसलिये कि वे पास नहीं हैं। हम जानते हैं कि उनमें सभी सद्गुण हैं। तो भी प्रेम नहीं कर पाते क्योंकि हम प्रेम गुणों के कारण नहीं, बल्कि अपना जानकर प्रेम करते हैं। जब हम ठाकुर को अपनी आत्मा जानेंगे तो उनसे प्रेम करेंगे।

**प्रश्न**—महाराज, विश्वास और श्रद्धा में क्या अन्तर है ?

**महाराज**—विश्वास जहाँ है, कोई आवश्यक नहीं है कि वहाँ श्रद्धा भी हो। जैसे, मेरा विश्वास है कि अमुक ने एक वस्तु चुरायी है। अब वहाँ विश्वास तो है लेकिन श्रद्धा कहाँ है ? लेकिन जहाँ श्रद्धा होगी वहाँ विश्वास अवश्य होगा।

**प्रश्न**—महाराज, जप-ध्यान को समय, स्थान और बाह्य प्रकृति किस प्रकार प्रभावित करती है ?

**महाराज**—जप-ध्यान के लिये सुबह, शाम अच्छा समय बताया गया है। दोपहर को सन्धि-समय के हिसाब से ले सकते हैं। ध्यान के लिये महानिशा ( अर्द्धरात्रि ) सबसे प्रशस्त बतायी गयी है। इन समयों पर प्रकृति शान्त रहती है। विख्यात तीर्थ स्थान में जप-ध्यान अच्छा होता है। पुरी जप के लिये, शक्ति साधना के लिए अनुकूल है। हिमालय ध्यान के लिये अनुकूल है। सागर ध्यान के लिये अनुकूल नहीं होता। खुला मैदान ध्यान के लिये अनुकूल होता है। पर्वत की चोटी पर बैठनें से गाम्भीर्य होता है। प्रशान्त नदी के तटपर ध्यान अच्छा होता है। गुफा में ध्यान अच्छा होता है।

भक्ति साधना माने जप होगा साथ ही साथ लीला चिन्तन होगा। लेकिन ध्यान के समय केवल इष्ट-चिन्तन होगा, लीला-चिन्तन नहीं।

मन्द-मन्द हवा साधना के अनुकूल होती है, तेज हवा नहीं; बहुत गरम भी नहीं। ठंडा मौसम साधना के अनुकूल होता है। आकाश में घने बादल छाये हों तो गाम्भीर्य होता है। लेकिन यदि बिजली चमकती है तो विक्षेप

होता है। शुद्धानन्द स्वामी कहते थे–पंखा चलाकर फुर फुरे हवा में भक्त लोग ध्यान करते हैं। योगी लोग पंखा बंद करके ध्यान करते हैं।

**प्रश्न**–महाराज, यदि बहुत गरम हो, पसीना हो ?

**महाराज**–तो सहन करेगा।

**प्रश्न**–महाराज, योगी लोग ध्यान करते हैं तो मूलांधार से लेकर सहस्रार तक चक्र भेदन होता है। इस प्रकार क्रमशः उन्नति दिखायी देती है। क्या ज्ञानी लोगों का भी ऐसा ही कुछ होता है जिससे उनको मालूम हो कि उनकी उन्नति हो रही है ?

**महाराज**–योगी लोग चित्तवृत्ति को, मन को बाह्य वस्तुओं से हटाकर ध्यान करते हैं। श्रोतव्यो-मन्तव्यो-निदिध्यासितव्यो–ज्ञानी लोग ध्यान नहीं करते विचार करते हैं। विचार करते करते जिस किसी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचे तो अब उसको विपर्यय शून्य करने की चेष्टा करते हैं।

**प्रश्न**–महाराज, कैसे मालूम होगा कि उनका निष्कर्ष ठीक है ?

**महाराज**–खुद का ( अपना ) अनुभव, शास्त्र और ज्ञानी लोगों का मत तीनों यदि मिलता है तो समझेंगे कि निष्कर्ष ठीक है। और विचार करते-करते विपर्यय शून्य हो जायेंगे। जितना ही विपरीत भाव कम होगा उतना ही समझेंगे कि उन्नति हो रही है।

**प्रश्न**–महाराज, ठाकुर जी दो माली की कहानी कहते हैं। एक अच्छा से बागान में काम करता है। और दूसरा आपकी नाक ऐसी है, आप ऐसे है–आदि कहकर मालिक की प्रशंसा करता है और काम कुछ नहीं करता। और दूसरी तरफ कहते हैं–कलिकाल में नाम गुणगान ?

**महाराज**–भगवान का नाम गुणगान वा स्तोत्रादि पाठ करना–यह खुशामद करना नहीं है। ऐसा करना उनको याद करना है। भगवान के बहुत से गुण हैं तो उससे हमको क्या ? वे तो उनके हैं हमारे नहीं। हमें क्या मिलेगा ? मतलव यह है कि उनका गुणगान करते-करते हममें वे गुण धीरे-धीरे आते हैं। हम उन गुणों को अपने अन्दर ग्रहण करते हैं। असल बात यह है कि यह सब करके उनकी निकटता अनुभव करना अथवा उनके पास जाना।

**प्रश्न**–महाराज, जैसे किसी की प्रशंसा करने से वह खुश होता है। क्या भगवान भी वैसा करते हैं ?

**महाराज**–ना, ना, करके देखो न ! ( सभी हँसते है )।

**प्रश्न**–महाराज, शास्त्र पढ़ने से सिद्धान्त पर पहुँच गये तब भी पुनः पढ़ने पर उसका अर्थ नया ही लगता है तो शास्त्र कितनी बार पढ़ेंगे ?

**महाराज**–'स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।' जब तक संदेह दूर नहीं होता तब तक स्वाध्याय जारी रखेंगे। पहले स्वाध्याय करते है। फिर उसका मनन करते हैं। फिर विपर्यय को दूर करने के लिये, संशय को दूर करने के लिये साधना करते हैं।

**प्रश्न**–महाराज, अपने सहयोगियों और संघ के छोटे सदस्यों से कैसे काम लेना चाहिये ? उनके गलत होने पर क्या करना चाहिये ?

**महाराज**–जोर पूर्वक आदेश करके नहीं, बल्कि उनको समझा-बुझाकर नम्रभाव से काम लेना चाहिये। यह नहीं कि 'मैं' कहता हूँ यह करो।' विरोध में बोलने से अधिकांश समय उल्टा ही वह react, rebel करेगा। बल्कि शान्त भाव से उसकी भूल उसको समझा देने से वह ठीक समझ जायेगा। इसलिये व्यवहार के समय बहुत सतर्क रहना चाहिये।

**प्रश्न**–महाराज, संन्यासी को फुफकार ( गुस्सा ) करने का भी अधिकार नहीं है या आत्मरक्षा के लिये कर सकते हैं ?

**महाराज**–संन्यासी फुफकार ( गुस्सा ) भी नहीं करेगा। लेकिन मुश्किल होती है कि हम आदर्श का ठीक-ठीक पालन नहीं कर पाते तो विभिन्न ढंग से व्याख्या करते हैं। ( थोड़ा व्यंग के स्वर में ) तुमलोग कहना, 'हम लोग फुफकारते नहीं, अन्दर से ही बाहर हो जाता है।' ( सभी जोरों से हँसते हैं। )

**प्रश्न**–महाराज, obedience to what extent ?

**महाराज**–Obedience to whom ?

**प्रश्नकर्ता**–To sangha.

**महाराज**–No. Obedience to the ideal. सम्पूर्ण रूप से आदर्श के प्रति obedient ( आज्ञाकारी ) होगे। जहाँ आदर्श के विरुद्ध कुछ भी करने को कहा जाय, नहीं करोगे। चाहे इससे जो भी हो।

**प्रश्न**–महाराज, कभी-कभी कुछ आदेश दिया जाता है जो मन में लगता है कि आदर्श के विरुद्ध है तो क्या करें ?

**महाराज**–किसके मन में लगता है कि अमूक चीज आदर्श के विरुद्ध है ? तुम्हारे ?

**प्रश्नकर्त्ता**–हाँ, महाराज !

**महाराज**–तब तो सर्वनाश ! नहीं, जिनका मन शुद्ध है वही निश्चित कर सकते हैं कि क्या आदर्श के अनुकूल है और क्या प्रतिकूल है। तुम्हारे नहीं।

देखो, मुख्य बात है–यदि तुमको कोई झूठ बोलने को कहे तो कभी नहीं बोलना। दूसरी बात है जिससे तुम्हारा चरित्र खराब हो वह भी कभी नहीं करना। किसी प्रकार इसमें समझौता नहीं करना at any cost, No compromise अन्य बातों में यदि आदर्श का पालन पूर्णतः नहीं कर सकते तो जितना कर सकते हो उतना करना।

**प्रश्न**—महाराज, राजा महाराज God-mindfnlness (ईश्वर पर ध्यान देने) की बात कहते हैं, इसका क्या मतलब ?

**महाराज**—जैसे दाँत दर्द करने पर सब समय टनटन (कन-कन) करता है। वैसे ही मन में सब समय भगवान की याद बनी रहती है।

**प्रश्न**—महाराज, इस अवस्था को पानेवाला आदमी क्या सब समय उनका नाम जपता है अथवा गुणचिन्तन करता है ?

**महाराज**—ऐसी बात नहीं है। तुम लोग तो जानते नहीं कि एक माँ का मन कैसे उसके बीमार लड़के के यहाँ पड़ा रहता है। सदा उसकी चिन्ता करती रहती है। यदि माँ होते तो जानते। समझो तुम किसी को बहुत प्यार करते हो तो जैसे सब समय उसके बारे में सोचते रहते हो। उसी प्रकार God mindfullness को समझो।

**प्रश्न**—महाराज, दाँत दर्द के समय जैसे कार्य अच्छी तरह नहीं किया जाता वैसे ही यदि दाँत दर्द के समान भगवान का स्मरण करेगा तो कार्य ठीक से नहीं कर पायेगा ?

**महाराज**—कार्य नहीं हुआ तो क्या हुआ ? कार्य लक्ष्य नहीं है means (साधन) है। एक माँ बच्चे को नहलाती है, कपड़ा पहनाती है, दूध पिलाती है, खिलाती है—लेकिन सब समय बच्चे का कल्याण चिन्तन करती है। यहाँ वह बहुत सा कार्य करती है लेकिन कभी भार अनुभव नहीं करती, बल्कि आनन्द ही पाती है। उसी प्रकार उसी भाव से कार्य करने से भगवान का चिन्तन भी होगा और भार भी नहीं मालूम होगा।

**प्रश्न**—महाराज, हमलोग प्रचार करते हैं। हमें प्रचार के लिये कहा भी जाता है। लेकिन ठाकुर क्या वैसा करते थे ?

**महाराज**—ठाकुर नाम-यश नहीं चाहते थे। लेकिन प्रचार करते थे। भगवान के नाम का प्रचार करते थे, खुद के नाम का नहीं।

**प्रश्न**—महाराज, ठाकुर कहते हैं कि प्रचार करने के लिये 'चपरास' (आदेश) चाहिए।

**महाराज**—वह तो तुम लोगों के पास है ही।

**प्रश्नकर्त्ता**—कैसे मालुम ?

**महाराज**—तुम इस संघ में साधु हुए हो। क्या तुम अपना प्रचार करते हो ? अपने लिये कुछ करते हो।

**प्रश्नकर्त्ता**—नहीं।

**महाराज**—तो फिर।

**प्रश्न**—महाराज, भक्त लोग जो हृदय में भगवान का ध्यान मन से करते हैं, उसमें चक्षु अथवा चक्षुरिन्द्रिय का कोई योगदान है क्या ?

**महाराज**—नहीं, बाह्यचक्षु अथवा चक्षुरिन्द्रिय की कोई उपयोगिता नहीं है। ❑

# सेवामूर्ति श्रीरामकृष्ण परमहंस

—स्वामी आत्मानन्द

विश्व के आध्यात्मिक इतिहास में श्रीरामकृष्ण परमहंस का स्थान अतुलनीय है। उनके जीवन में आध्यात्मिक अनुभूतियों की जितनी विविधता दिखायी देती है, उतनी और किसी महापुरुष के जीवन में दृग्गोचर नहीं होती। उनका जीवन मानो धर्म और अध्यात्म की एक विराट् प्रयोगशाला था, जहाँ अनन्त नवीन भावों का आविष्करण और पुरस्करण सम्पन्न हुआ था। उनके जीवन के द्वारा प्रकट सेवाभाव उनकी इन्हीं आध्यात्मिक अनुभूतियों का बाहरी प्रकाश था।

श्रीरामकृष्ण परमहंस निर्विकल्प समाधि की उपलब्धि कर अद्वैतानुभूति में प्रतिष्ठित हो गये थे। फलस्वरूप, सर्वत्र उन्हें उसी एक आत्मज्योति के दर्शन होते। उनकी अवस्था 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की हो गयी थी। उनकी यह एकत्वानुभूति इतनी तीव्र और गहरी थी कि किसी व्यक्ति के हरी-हरी दूब को रौंदते हुए चलने पर उन्हें लगा कि वह उनकी छाती को ही रौंदते हुए चला जा रहा है। दो माँझियों में लड़ाई हो जाने से एक ने दूसरे की पीठ पर जोरों से तमाचा जड़ दिया। श्रीरामकृष्ण को ऐसा लगा कि वह तमाचा उन्हें ही लगा है और वे पीड़ा से कराह उठे। उनकी पीठ पर उंगलियों के निशान उभर आये, मानो माँझी ने उन्हीं की पीठ पर तमाचा मारा हो।

ये घटनाएँ अविश्वसनीय होने पर भी सत्य हैं। श्रीरामकृष्ण का सेवाभाव उनके इसी एकत्वानुभव पर खड़ा था। वेदान्त दर्शन का सर्वोच्च लक्ष्य यही एकत्वानुभूति है। श्रीरामकृष्ण ने वेदान्त को अपने जीवन में उतार कर यह प्रदर्शित कर दिया कि वह केवल बुद्धि का व्यायाम नहीं है, केवल तर्कणाओं और युक्ति-विचारों का जाल नहीं है, बल्कि जीवन का अनुभूतिगम्य सत्य है। उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि वेदान्त को व्यावहारिक बनाया जा सकता है, और इस व्यावहारिक वेदान्त को उन्होंने सेवा के नाम से पुकारा। उनका तर्क यह था कि जब सारा संसार उसी ईश्वर से निकला है, उसी में प्रतिष्ठित है और एक दिन उसी में लीनता को प्राप्त हो जायगा, तो फिर ईश्वर को छोड़ संसार में और क्या है ? इसका यही तात्पर्य हुआ कि वही ईश्वर, जो मुझमें समाया है, एक पीड़ित के भीतर भी छिपा है। तो क्या यह उचित नहीं कि हम पीड़ित में निहित उस ईश्वर की सेवा के लिए आगे बढ़ आएँ ? जो ईश्वर पर विश्वास करता हुआ भी दुःखी के भीतर विराजमान ईश्वर की सेवा के लिए चेष्टाशील नहीं है, श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में उस व्यक्ति का ईश्वर में विश्वास होना या न होना बराबर है। इस दृष्टि से उन्होंने सेवा पर एक नया प्रकाश डाला और इस प्रकार उसे दया से भिन्न कर दिया।

वह सन् १८८४ ई० की घटना है। श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर-स्थित काली-मन्दिर के अपने कमरे में भक्तों से घिरे बैठे हुए थे। नरेन्द्र भी वहाँ उपस्थित थे, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्वविख्यात हुए। वार्तालाप के प्रसंग में वैष्णव-मत की बात उठी। इस मत के सार तत्व को संक्षेप में व्यक्त करते हुए श्रीरामकृष्ण बोले, इसके अनुसार ये तीन बातें नित्य करणीय हैं—नाम में रुचि, जीव पर दया, वैष्णव की सेवा। जो नाम है, वही ईश्वर है—नाम और नामी को अभिन्न जानकर सर्वदा अनुरागपूर्वक नाम जपना चाहिए, भक्त और भगवान्, कृष्ण और वैष्णव को अभिन्न जानकर सर्वदा साधु-भक्तों के प्रति श्रद्धा और उनकी सेवा करनी चाहिए, तथा यह सारा विश्व कृष्ण का ही है ऐसा समझकर सब जीवों पर दया।' 'सब जीवों पर दया' इतना कहकर ही श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गये। वे वाक्य को पूरा भी न कर पाये। कुछ समय पश्चात् जब उनकी अर्धचेतना लौटी, तो वे कहने लगे, 'जीवों पर दया- जीवों पर दया ? दूर हो मूर्ख। तू कीटाणुकीट। जीवों पर दया करेगा ? दया करनेवाला तू होता कौन है ? नहीं, नहीं,—जीवों पर दया नहीं—शिवज्ञान से जीवों की सेवा।'

नरेन्द्र यह सुनते ही चमत्कृत हो उठे। उन्हें लगा कि 'दया' और 'सेवा' का ऐसा अन्तर सम्भवतः पहले किसी ने नहीं किया था। 'दया' कहने से प्रतीत होता है मानो दया करनेवाला बड़ा है और जिस पर दया की जा रही है, वह छोटा। इस प्रकार दया की प्रक्रिया ऊँच और नीच के भेद को बनाये रखकर चलती है। पर सेवा कहने से, 'शिव-ज्ञान से जीवों की सेवा' कहने से बोध होता है कि वही शिव, जो स्वयं सेवा करने वाले के भीतर विराजमान है, उसके भीतर भी बसे हुए हैं, जिसकी सेवा की जा रही है। इस प्रकार यहाँ भेद का नहीं, अभेद का प्रकाश है, ऊँच-नीच का नहीं, समानता का व्यवहार है।

ये वही नरेन्द्रनाथ थे, जो निर्विकल्प समाधि के आनन्द में डूबे रहना चाहते थे। पहले उन्हें सेवा आदि की बात भाती नहीं थी। एक समय जब वे समाधि में डूबने के लिए अत्यन्त व्याकुल थे तो श्रीरामकृष्ण ने उन्हें एकान्त में बुलाकर स्नेहपूर्वक पूछा था, 'नरेन, तू क्या चाहता है ? इस पर नरेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया था, 'महाराज आशीर्वाद दीजिए कि मैं योगी शुकदेव की नाईं निर्विकल्प समाधि के आनन्द में अहर्निश डूबा रहूँ

और जब समाधि से उतरूँ, तो शरीर को बनाये रखने के लिए थोड़ा सा अन्न पेट में डाल लूं और फिर से समाधि में डूब जाऊँ। पर यह सुन श्रीरामकृष्ण प्रसन्न नहीं हुए थे, अपितु उन्होंने नरेन्द्र का तिरस्कार करते हुए कहा था, छिः छिः नरेन्द्र ! कहाँ मैं सोचता था कि तू एक विशाल वट वृक्ष के समान होगा, जिसकी छाँह तले लाखों थके-मांदे लोग विश्राम ग्रहण करेंगे और कहाँ देखता हूँ तू अपनी मुक्ति के लिए कातर हो रहा है। अरे बेटा, अपनी मुक्ति की चेष्टा से भी उच्चतर अवस्था है। और बाद में श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को समझा दिया था कि जीव में शिव को देखकर, नर में नारायण को देखकर उस शिव या नारायण की सेवा ही अपनी मुक्ति के प्रयास से भी बढ़कर है।

तभी तो नरेन्द्र नाथ ने स्वामी विवेकानन्द बनकर अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस के उपदेशानुसार 'दरिद्रनारायण' की सेवा का प्रवर्तन किया। देश के युवकों का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा था–तुम्हें अभी तक पढ़ाया गया है–मातृ-देवो भव्, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथिदेवो भव, 'मैं तुम लोगों को आगे का पाठ पढ़ाता हूँ–दरिद्रदेवो भव, पीड़ितदेवो भव, आर्तदेवो भव। उन्होंने और कहा था, सारी उपासना का सार है–पवित्र होना और दूसरों की भलाई करना। जो शिव को दीन-हीन में, दुर्बल में और रोगी में देखता है, वही वास्तव में शिव की उपासना करता है, और जो शिव को केवल मूर्ति में देखता है, उसकी उपासना तो केवल प्रारम्भिक है। जो मनुष्य शिव को केवल मन्दिरों में देखता है, उसकी अपेक्षा शिव उस व्यक्ति पर अधिक प्रसन्न होते हैं, जिसने बिना किसी प्रकार जाति, धर्म या सम्प्रदाय का विचार किये, एक दीन-हीन में शिव को देखते हुए उसकी सेवा और सहायता की है।

स्वामी विवेकानन्द ने सेवा की अपनी सारी प्रेरणा अपने गुरुदेव से प्राप्त की थी। श्रीरामकृष्ण का जीवन ही सेवामय था, वे सही अर्थों में सेवामूर्ति थे। अन्तिम समय में जब उन्हें गले का कैंसर हो गया था और चिकित्सकों ने उन्हें बोलने से मना किया था, तब भी वे आगत जिज्ञासुओं से वार्तालाप करना बन्द न करते। सेवकों और भक्तों के अधिक निषेध करने पर कहते, यदि एक व्यक्ति की सहायता करने मुझे बीस हजार भी जन्म लेने पड़ें तो स्वीकार है। सेवा की उनकी यह आन्तरिकता उनके सर्वात्मबोध पर प्रतिष्ठित थी, जिसका बड़ा ही मार्मिक परिचय हमें उनके जीवन की एक घटना से मिलता है।

पंडित शशधर शास्त्री तर्क चूड़ामणि श्रीरामकृष्ण की अस्वस्थता का समाचार सुन उन्हें देखने आये। शास्त्रीजी का नाम उनकी विद्वत्ता और पाण्डित्य के लिए बंगाल भर में विख्यात था। तब श्रीरामकृष्ण गले के रोग के कारण अन्न ग्रहण नहीं कर सकते थे। उन्हें तीव्र वेदना हुआ करती। शास्त्रीजी ने उन्हें सुझाव दिया, महाराज, हमारे योगशास्त्रों का कथन है कि यदि योगी अपने किसी रुग्ण अंग पर मन को केन्द्रित करे, तो उससे अंग स्वस्थ हो जाता है। आप तो महान् योगी हैं। आप क्यों नहीं अपने मन को गले पर एकाग्र करके रोग को ठीक कर लेते ? इस पर श्रीरामकृष्ण ने कुछ खीज के स्वर में कहा, कैसे पण्डित हो जी ? जिस मन को मैंने जगदम्बा के पादपद्मों में समर्पित कर दिया है, तुम कहते हो कि उसे मैं वहाँ से वापस ले लूं और इस हाड़-मांस के सड़े गले पिण्ड पर लगा दूं ? ऐसी बात कहते तुम्हे लज्जा नहीं आती ?' और सचमुच शास्त्रीजी लज्जित हो गये। उन्होंने क्षमायाचना कर कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण से विदा ली। शास्त्रीजी के जाने के बाद नरेन्द्रनाथ ने श्रीरामकृष्ण को पकड़ा, कहा, 'महाराज, शास्त्रीजी ने तो ठीक ही कहा। आपको इतना कष्ट है, आप कुछ खा-पी नहीं सकते, इसलिए हम लोग भी अत्यन्त दुःखी हैं। आप कम से कम, हम लोगों के लिए अपने मन को गले पर केन्द्रित कीजिए न !' श्रीरामकृष्ण बोले, 'आखिर तू भी वही कहता है रे। मैं यह नहीं कर सकता।' पर जब नरेन्द्र ने खूब जोर दिया, तो उन्होंने कहा, 'मैं कुछ नहीं जानता, माँ जगदम्बा जैसा करेगी वैसा होगा।' नरेन्द्र इस पर बोले,' महाराज, आप जो कहेंगे, सो जगदम्बा करेगी। आप हम लोगों के लिए माँ से कहिए न ! लाचार हो श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'ठीक है देखूंगा।' थोड़ी देर बाद नरेन्द्र ने जाकर पूछा,' महाराज आपने हमारी बात माँ से कही थी ?' वे उत्तर में बोले, हाँ, मैंने से कहा–माँ, नरेन्द्र कहता है कि इस रोग के कारण मैं कुछ खा-पी नहीं सकता हूँ, इसलिए इन लोगों को बहुत कष्ट होता है, इसलिए नरेन्द्र कहता था कि मैं तुझसे इस रोग को ठीक कर देने के लिए कहूँ, जिससे मैं कुछ खा-पी सकूँ, ताकि ये लोग भी सुखी हों।' 'तो फिर माँ ने क्या कहा, महाराज ! नरेन्द्र अत्यन्त उत्सुक हो उनकी बात को बीच में काट बोल उठे।' क्या बताऊँ रे, श्रीरामकृष्ण ने मानो सोच में पड़कर कहा, 'माँ ने मेरी बात सुनकर तुम सब लोगों को इशारे से दिखाकर मुझसे कहा–'क्या तू इतने मुंहों से नहीं खाता जो तुझे खाने के लिए अपना अलग से मुंह चाहिए ? यह सुनकर मैं तो चुप हो गया। अब तू ही बता इसका मैं माँ को भला क्या उत्तर देता।' श्रीरामकृष्ण की अनुभूति की ऐसी व्यापकता को देख नरेन्द्रनाथ भी निरूत्तर रह गये, उनके मुख से कोई शब्द न फूटा।

तो यह वह एकत्वानुभूति थी, जो सेवामूर्ति श्रीरामकृष्ण परमहंस के अपूर्व सेवामय जीवन का अटूट प्रेरणा-स्रोत थी। ☐

# करूणा सिंधु आचार्य शंकर

–स्वामी अपूर्वानन्द

आचार्य शंकर केवल साधक श्रेणीभुक्त ही नहीं थे, बल्कि सिद्धाचार्य भी थे। देवकार्य के साधन हेतु उन्होंने केरल प्रदेश के नम्बूदरी नामक एक उच्च ब्राह्मणकुल में जन्म लिया था। शंकर के जन्म और जीवन के साथ नारियल, सुपारी, आम्र और कदली वृक्षों से सुशोभित कलाडी ग्राम, आलवाई नदी, द्विजचूड़ामणि शिवगुरु तथा देवी रूपिणी विशिष्टा देवी घनिष्ठ भाव से सम्मिलित हैं।

शास्त्रसेवी शिवगुरू यद्यपि विद्याधर के एकमात्र पुत्र थे, तथापि गुरुगृह से समावर्तन की उन्हें इच्छा नहीं थी। शास्त्र के पठन-पाठन में समस्त जीवन बिता देना ही उनके हृदय की ऐकान्तिक इच्छा थी, परन्तु पिता के अत्यन्त आग्रह के कारण उन्हें गुरुगृह से लौटकर अधिक उम्र में भी गार्हस्थ्य जीवन का आरम्भ करना पड़ा। कालान्तर में पिता के निधन के अनन्तर अपने छोटे से परिवार का दायित्व निवाहने के साथ ही साथ शास्त्रामोदी शिवगुरु अध्ययन-अध्यापन में जीवन का अधिकांश समय बिता देते थे। साधारण देवोत्तर सम्पत्ति से उनके छोटे से परिवार की सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो जाती थी।

अपुत्रक शिवगुरु क्रमशः बूढ़े हो चले। सन्तानहीन विशिष्टादेवी के हृदय में भी सुख नहीं था। दोनों ने परामर्श करके व्रत-ग्रहणपूर्वक अपने ग्राम से थोड़ी दूर पर स्थित वृष-पर्वत के देवता चन्द्रमौलीश्वर शिव की शरण ली और कुछ दिनों तक केवल कन्दमूल-फल का आहार करके तथा उसके अनन्तर केवल शिव का चरणामृत पान कर निरन्तर प्रार्थना, पूजा-अर्चना और कठोर साधना द्वारा शरीरक्षय करने लगे। वर्ष पूर्ण होने के पहले ही एक रात को शिवगुरु ने स्वप्न में देखा कि जटाजूटधारी कर्पूरगौर सदाशिव ज्योतिर्मय शरीर से उनके सामने आविर्भूत हुए हैं। उन्होंने मधुर स्वर से कहा-बेटा ! मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत ही प्रसन्न हूँ। क्या प्रार्थना है, बताओ। मैं उसे पूर्ण कर दूँगा।

शिवगुरु ने देवाधिदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा–''मुझे एक दीर्घायु सर्वज्ञ पुत्र दीजिये।''

भगवान आशुतोष ने स्मित हास्य के साथ कहा- ''सर्वज्ञ पुत्र चाहो तो वह दीर्घायु नहीं होगा, दीर्घायु चाहो तो वह सर्वज्ञ नहीं होगा। बताओ, तुम किस प्रकार का पुत्र चाहते हो-सर्वज्ञ या दीर्घायु।''

धर्मप्राण शिवगुरु ने सर्वज्ञ पुत्र पाने की ही प्रार्थना की। तब महादेव ने कहा-''तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। बेटा, तुम्हें एक सर्वज्ञ पुत्र मिलेगा। मैं स्वयं ही तुम्हारे पुत्र रूप से अवतीर्ण होऊँगा। अब तपस्या समाप्त करो। अपनी सहधर्मिणी को लेकर घर लौट जाओ।

आनन्द से आप्लुत होकर रोमांचित शरीर से शिवगुरु ने देवता की चरणवन्दना की। स्वप्न-वृतान्त सुनकर विशिष्टादेवी ने अपने को महान भाग्यवती समझा। घर लौटकर दोनों पवित्र हृदय से शिव की पूजा-अर्चना में समय व्यतीत करने लगे। यथा समय ६८६ ई० में वैशाख शुक्ला तृतीया सौर १२ तारीख के शुभ मध्याह्नकाल में विशिष्टादेवी के गर्भ से शिशुशंकर-सदृश कमनीयकान्ति सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र मुखदर्शन से शिवगुरु परमानन्दित हुए। उन्होंने भगवान शंकर के आर्शीर्वाद से प्राप्त पुत्र का नाम 'शंकर' रखा।

थोड़े ही दिनों में उस बालक शिष्य की प्रतिभा और विद्यानुराग देखकर गुरु मुग्ध हुए। बालक के विशुद्ध उच्चारण तथा तीक्ष्ण बुद्धि ने सब को आश्चर्यचकित कर दिया। बालक शंकर को जो-जो ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे उन्हें तो वह कण्ठस्थ कर ही लेता था, उसके अतिरिक्त दूसरे शिष्यों को आचार्य जिन शास्त्रों का पठन कराते थे, उनके पास बैठकर उन्हें भी वह अनायास सीख लेता था। अल्प दिनों में ही बालक शंकर गुरु का विशेष प्रियपात्र बन गया। दो वर्षों में ही शंकर उपनिषद्, पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र, न्याय, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक आदि अनेक शास्त्रों में पारंगत होकर बृहस्पति के समान विद्वान् हो गया।

गुरुगृह-निवास के नियमानुसार शंकर एक दिन भिक्षा के लिए एक ब्राह्मण के घर पहुँचे। गृहस्थ बहुत ही निर्धन था। भिक्षा देने योग्य मुट्ठीभर चावल भी उसके घर में नहीं था। ब्राह्मणपत्नी ने शंकर के हाथ में एक आँवला देकर रोते हुए अपनी दरिद्रावस्था का वर्णन किया। ब्राह्मणी की निर्धनता ने शंकर के कोमल हृदय को मथित कर डाला। उसने वहीं खड़े होकर करूणाविगलित चित्त से दारिद्र्यदुःख-विनाशिनी लक्ष्मीदेवी का एक स्तोत्र रचकर ब्राह्मणी के दुःखमोचन के लिए देवी के चरणों में कातर प्रार्थना की। बालक के स्तव से तुष्ट होकर लक्ष्मीदेवी ने आविर्भूत होकर कहा–''बेटा, मैंने तुम्हारा अभिप्राय जान लिया है, परन्तु इस निर्धन परिवार ने पूर्वजन्मों में ऐसा कुछ भी पुण्य कार्य नहीं किया जिससे मैं इन्हें धन दे सकूँ।''

तब बालक शंकर ने उत्तर दिया–''क्यों माता, इस गृहणी ने तो अभी मुझे एक आँवला दिया है। यदि

आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुई हों, तो इस परिवार को दारिद्रता से मुक्त कर दीजिये।''

बालक के वाक्य से प्रसन्न होकर देवी ने कहा-''वही होगा, बेटा। मैं इन्हें प्रचुर सोने के आँवले दूँगी।''

यह सुनकर शंकर प्रसन्नता के साथ ब्राह्मणी को शीघ्र धनप्राप्ति का समाचार देकर अपने गुरुगृह में लौट आया। दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मण दम्पति ने देखा, उनके घर में सर्वत्र सोने के आँवले बिखरे पड़े हैं। आनन्द से प्रफुल्लित होकर वे उन सोने के आँवलों को बटोरने लगे और उस बालक ब्रह्मचारी के आशीर्वाद से ही उन्हें प्रचुर धन की प्राप्ति हुई है, यह सब को बताने लगे। बालक शंकर की अलौकिक शक्ति की बात सर्वत्र फैल गयी। यह छोटी सी घटना शंकर की दया, करुणा का परिचय देती है।

धर्मनिष्ठ विशिष्टादेवी प्रतिदिन आलवाई नदी में स्नान करने जाती थीं और रास्ते में कुलदेवता केशव के मन्दिर में पूजा-अर्चना करके घर लौटती थी। आलवाई उस प्रदेश की पवित्र नदी है। घर से वह नदी कुछ दूर होने पर भी धर्मनिष्ठ विशिष्टादेवी प्रतिदिन उस नदी में स्नान करने जाया करती थीं। गर्मी के दिन थे। एक दिन विशिष्टादेवी नदी में नहाने गयीं। बहुत विलम्ब हो जाने पर भी माँ को न लौटते देखकर शंकर बहुत चिन्तित हुआ। वह माँ की खोज में नदी की ओर चला। कुछ दूर जाते ही उसने देखा कि माँ मार्ग में अचेत पड़ी है। व्याकुल होकर शंकर रोते हुए माँ की सेवा में लग गया और चेतना लौट आने पर माँ का हाथ पकड़कर उन्हें धीरे-धीरे घर लिवा लाया।

मातृभक्त शंकर के मन की अवस्था अवर्णनीय थी। मातृकष्ट से वह अधीर हो गया और आँसू बहाते हुए श्री भगवान् के चरणों में प्रार्थना करने लगा-''प्रभु आप सर्वशक्तिमान् है। आपकी इच्छा से तो सब कुछ सम्भव है। माँ का इतना कष्ट तो सहा नहीं जाता। कृपा करके नदी को मेरे घर के पास ला दीजिये ताकि माँ को नहाने के लिए दूर जाने का कष्ट न हो।'' इस एकमात्र प्रार्थना ने शंकर के समस्त मन-प्राणों को व्याकुल कर डाला। वह दिनरात उसी प्रार्थना में तल्लीन हो गया।

शंकर अवस्था में बालक होने पर भी महान् पण्डित तथा सर्वशास्त्र पारंगत था। किन्तु माँ के कष्ट ने उसे अधीर कर डाला। उसने एक बार भी न सोचा कि नदी की गतिपरिवर्तन सम्भव नहीं है। विशिष्टादेवी बालक के आचरण से विस्मित हुईं। उन्होंने अनेक प्रकार से पुत्र को समझाया, परन्तु शंकर की प्रार्थना निरन्तर चलती ही रही।

करुणामय श्री भगवान् बधिर नहीं है। भक्त की प्रार्थना वे सुनते हैं। इस कारण शंकर की प्रार्थना से विचलित होकर उन्होंने उसका प्रबन्ध किया। उस साल की वर्षा में ही नदी की गति का परिवर्तन हो गया। उत्तर तीर तोड़कर आलवाई नदी कालाडी ग्राम के पास से प्रवाहित हुई। विशिष्टादेवी तब बहुत गर्व से लोगों को बताने लगीं-''देखो, मेरे शंकर की प्रार्थना से ही तो श्रीभगवान् ने नदी को हमारे घर के पास ला दिया।'' इस अलौकिक घटना की बात शीघ्र ही सर्वत्र फैल गयी। दल के दल लोग आकर इस अद्‌भुत बालक को देखने लगे। भगवद्-इच्छा से अनेक असम्भव बातें भी सम्भव होती हैं। साथ-साथ भक्ति और भक्त की महिमा का भी प्रचार होता है।

❑

*भय और दुर्वलता को मन से दूर फेंक दो। पाप की बात सोचकर मन को कभी निराश मत करना। पाप जितना भी बड़ा क्यों न हो, वह मनुष्य की ही दृष्टि में बड़ा है, भगवान् की दृष्टि में वह कुछ भी नहीं है। उनके कृपा कटाक्ष से कोटि-कोटि जन्मों के पास एक क्षण में कट सकते हैं। लोगों को पाप के पथ से हटाने के लिए ही शास्त्रों में पाप का इतना भय दिखाया गया है। फिर भी, कर्म का फल अवश्यम्भावी है। बुरा काम करने पर मन में अशान्ति पैदा होती है।*

**—स्वामी ब्रह्मानन्द**

# भगवान बुद्ध-कुछ भूले-बिसरे प्रसंग

—प्रो० वंशीधर त्रिपाठी

सारनाथ में धर्मचक्रप्रवर्तन हो चुका था। चारों ओर बौद्धधर्म की बयार आंधी का रूप ले रही थी। **बुद्धं शरणं गच्छामिं, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि ( त्रिशरण )** की तुमुल ध्वनि सारनाथ, काशी की सीमाओं को पार करके चारों ओर बढ़ रही थी। इसी बीच कपिलवस्तु से एक दुःखद समाचार आता है। महाराज शुद्धोदन मृत्युशैया पर पड़े हैं। चल पड़ते हैं भगवान बुद्ध कपिलवस्तु की ओर। वैराग्य चाहे जितना प्रगाढ़ हो जाए, मन के किसी कोने में पूर्व स्मृतियाँ छिपी तो बैठी ही रहती हैं।

बुद्ध पहुँच जाते हैं, कपिलवस्तु। पहले शयया-स्थित पिता के चरणों में नमन करते हैं। मंद स्वर में पिता आशीर्वाद देते हैं। राजा शुद्धोदन की जीवनशिखा तेजी से निर्वाण की ओर बढ़ रही है। बुद्ध पिता को समझाते हैं, 'देह नश्वर है, आज नहीं तो कल उसका विनाश होना ही है, उससे मोह क्या ? तृष्णा के चलते ही जीवनदीप भव-चक्र में फंसता है। तृष्णा और अज्ञान से मुक्ति लिए बिना निर्वाण अप्राप्य होता है।' पिताजी सब कुछ सुनते हैं। हाँ, हूँ करते जाते हैं, लेकिन वे इस मनःस्थिति में नहीं हैं कि पूर्व संस्कारों को त्यागकर पुत्र के द्वारा प्रवर्तित नवसत्य को मान्यता दें।

यशोधरा को सारी सूचना है, पति के आने की। लेकिन उसके मन में अमर्ष है। चले गए मुझे छोड़कर, नवजात शिशु को छोड़कर, वैराग्य पथ पर। मुझे बताकर जाते तो क्या मैं उनकी यात्रा में बाधा उपस्थित करती ? मैं उनकी सहधर्मिणी हूँ। उन्हें मुझे बताकर जाना चाहिए था। यही सब सोचती-विचारती यशोधरा अपने कमरे में गुमसुम बैठी है। बड़ा सुन्दर चित्रण किया हैं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा की मनोदशा का अपने खण्ड-काव्य 'यशोधरा' में।

**सखि! वे मुझसे कहकर जाते तो क्या अपनी भवबाधा ही पाते ?**

मानिनी यशोधरा बुद्ध के पास नहीं आती है। सोचती है, उनको आना हो तो आएँ, नहीं तो रहने दें। चिन्तन की लहरें मन की सीमा लांघकर एक से दूसरे तक पहुँचती रहती हैं। अचानक बुद्ध को लगता है कि उन्हें यशोधरा के पास जाना चाहिए। वे पिता से विदा लेते हैं और सीधे प्रवेश करते हैं यशोधरा के कक्ष में। यशोधरा बुद्ध के स्वागत में उठती नहीं है। कहते हैं, यशोधरा को देखकर बुद्ध का ज्ञानसूर्य कुछ क्षणों के लिए मोह के बादलों से घिर जाता है। उनकी चिन्तन-सारेता का तटबंध सांसरिक मोह-माया के थपेडे से टूट जाता है। उनके रुदन की एक तीव्र ध्वनि से सारा कक्ष आप्लावित हो जाता हैं धीरे-धीरे सब कुछ शान्त होता है। बुद्ध पुनः पूर्व स्थिति में आ जाते हैं और यशोधरा के कक्ष से बाहर आ जाते हैं।

अचानक पीछे देखते हैं तो उनकी दृष्टि उनका अनुगमन करते राहुल पर पड़ती है। स्नेह उमड़ता है। एक टक राहुल को देखते हैं। राहुल भी बिना पलक झपे उन्हें निहार रहा है। राहुल अब खूब टपर-टपर बोलने लगा है। उसे किसी ने पिताश्री से 'कुछ मांगने का पाठ पढ़ा दिया है। धीरे-धीरे राहुल के होंठ खुलते हैं, 'पिताश्री, मुझे मेरा पैतृक उत्तराधिकार चाहिए।' बुद्ध राहुल की ओर देखते हैं, तो देखते ही रह जाते हैं। इतना छोटा बालक और इतनी बड़ी बात। निश्चय ही इसे किसी ने अच्छी तरह 'पढ़ा-लिखाकर' मेरे पास भेजा है। थोड़ी देर तक सोचते हैं, बुद्ध! उसके बाद उनके मुख से शब्द निकलते हैं, 'बेटे राहुल, मैंने तो सारा कुछ त्याग दिया है। कुछ भी तो नहीं हे मेरे पास। है तो बस यही चीवर जो मेरे शरीर पर है। हाँ, एक सम्पत्ति है मेरे पास, प्रव्रज्जा। कहो तो तुम्हें दे दूं।' राहुल ने सोचा प्रव्रज्या कोई फल होगा, मिष्ठान्न होगा, इसीलिए प्रसन्न मुद्रा में बोला, हाँ-हाँ, दे दीजिए मुझे, प्रव्रज्जा।' फिर क्या था, दे दी भगवान बुद्ध ने सात वर्षीय राहुल को प्रव्रज्या। स्वयं तो परिव्राजक हो ही गए, वंश-परम्परा चलाने के लिए एक पुत्र था, उसे भी प्रव्रज्या दे दी। हाहाकार मच गया पूरे महल में। राहुल परिव्राजक हो गया, राहुल परिव्राजक हो गया, अब क्या होगा ? महाराज शुद्धोदन के बाद कपिलवस्तु को राजगद्दी पर कौन बैठेगा ? बात महाराज शुद्धोदन तक पहुँची। एक ओर तो मृत्यु की छाया, ऊपर से यह वज्रपात। बुलवाया उन्होंने बुद्ध को। बुद्ध के आने पर महाराज की डबडबायी आँखों

से मानो स्वर फूट रहे हैं, 'गौतम, जब तुम परिव्राजक हो गए, तो हमारी आँखों का तारा राहुल ही इस राज्य की नाव खेकर आगे बढ़ाता, लेकिन तुमने उसे भी प्रव्रज्या देकर हमारी वंश-परम्परा को उच्छिन्न कर दिया।' अश्रुपूरित नेत्रों से अपनी व्यथा कहते हुए महाराज शुद्धोदन अनंत में विलीन हो जाते हैं। इतना सब हो जाता है, पर बुद्ध की मुखाकृति पर ज्ञनाभा पूर्ववत अठखेलियां कर रही हैं। बुद्ध की दृष्टि में यह तो तिनके के जलने जैसा है। क्या आसमान एक तारे के टूटने से रोता है ? एक सितारा टूट गया तो आसमान क्या रोएगा ? कुछ ऐसी ही दशा राजा जनक की भी थी। उनका उद्घोष था कि यदि पूरी मिथिला जलकर राख हो जाए, तो भी इससे उनकी कोई हानि नहीं। **मिथिलायां दह्यमानायां न मे दहति किंचन।** इसके बाद भगवान बुद्ध राहुल को लेकर कपिलवस्तु से सारनाथ आ जाते हैं।

भगवान् बुद्ध संध्या नहीं करते थे। एक बार किसी ने उनसे पूछा, 'भन्ते, आप संध्या क्यों नहीं करते ?' बुद्ध का उत्तर था अरे भाई, संध्या सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की जाती है परंतु मेरे हृदयाकाश में न तो सूर्योदय है और न ही सूर्यास्त । मेरे हृदय में ज्ञान का सूर्य कभी अस्त ही नहीं होता मैं संध्या कैसे करूं ? **हृदाकाशे चिदानंदमुदाभाति निरंतरम्/उदयास्तं न पश्यामि कथं संध्यामुपास्महे।**

भगवान् बुद्ध अपनी बात आगे बढ़ाते हैं, 'एक बात और। संध्या सूतक की स्थिति में वर्जित मानी जाती है। मेरे घर दो-दो सूतक पड़े हैं। एक तो मेरी मोहरूपी माता मर गयी है, दूसरे, मेरे यहाँ बोधरूपी पुत्र पैदा हो गया है। अब दो-दो सूतकों में संध्या कैसे की जा सकती है ?

**मृतामोहमयी माता जातो बोधमयः सुतः/सूतकद्वे सम्प्राप्ते कथं संध्यामुपास्महे**

भगवान् बुद्ध का उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ता चुप हो जाता है। ❑

# जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना

**बोध कथा**

**भगवान बुद्ध** का जब पाटलिपुत्र में शुभागमन हुआ तो हर व्यक्ति अपनी-अपनी साम्पत्तिक स्थिति के अनुसार उन्हें उपहार देने की योजना बनाने लगा। राजा बिम्बिसार उनके पास गये और उसने राजकोष से लाये कीमती हीरे, मोती और रत्न उन्हें पेश किये। बुद्धदेव ने सबको एक हाथ से सहर्ष स्वीकार किया। इसके बाद मंत्रियों, सेठ साहूकारों और धनी व्यक्तियों ने एक-एक कर अपने-अपने उपहार उन्हें अर्पित किये और बुद्धदेव ने उन सबको एक हाथ से स्वीकार कर लिया।

इतने में ७०-८० बरस की एक बुढ़िया लाठी टेकते-टेकते वहाँ आयी। उससे ठीक तरह से चलते भी नहीं बन रहा था। बुद्धदेव को प्रणाम कर वह बोली, ''भगवन् आपके आने का समाचार मुझ अभी-अभी ही मिला। उस समय मैं यह अनार खा रही थी। मेरे पास कोई दूसरी चीज न होने के कारण मैं इस अधखाये फल को ही ले आयी हूँ। यदि आप मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करें, तो मैं अहोभाग्य समझूँगी।'' भगवान बुद्ध ने दोनों हाथ सामने कर वह फल ग्रहण किया।

राजा बिम्बसार को यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बुद्धदेव से कहा, ''भगवन ! क्षमा करे ! एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। कृपया उसका सामाधान करें ! हम सबने आपको कीमती और बड़े-बड़े उपहार दिये, जिन्हें आपने एक हाथ से ग्रहण किया, लेकिन इस बुढ़िया द्वारा दिए गये छोटे एवं जूठे फल को आपने दोनों हाथों से ग्रहण किया, ऐसा क्यों ?''

यह सुन बुद्धदेव मुस्कराये और बोले, ''राजन ! आप सबने अवश्य बहुमूल्य उपहार दिए हैं, किन्तु यह सब आपकी सम्पत्ति का दसवाँ हिस्सा भी नहीं है। आप लोगों ने मूल्यवान वस्तुओं का दान करके अपना बड़प्पन ही प्रकट किया है। आपने यह दान दीनों और गरीबों की भलाई के लिए नहीं किया है। इसलिए आपका यह दान 'सात्विक दान' की श्रेणी में नहीं आ सकता। इसके विपरीत इस बुढ़िया के पास देने के लिए कुछ न होते हुए भी उसने अपने मुँह का कौर ही मुझे दे डाला है। उसने तुच्छ भेंट ही क्यों न दी हो, सच्चे अन्तःकरण से दी है। भले ही यह बुढ़िया निर्धन है, लेकिन इसे सम्पत्ति की कोई लालसा नहीं है। यही कारण है कि इसके दान को मैंने खुले हृदय से-दोनों हाथों से स्वकार किया है।'' ❑

# बुद्ध के चार आर्य सत्य

—डा० लाल सिंह

प्रत्येक मनुष्य दुखी है। वह अपने दुःख से मुक्त होना चाहता है। मनुष्य को दुःख से छुटकारा दिलाने के लिए भगवान बुद्ध ने, 'दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख का निवारण है, दुःख निवारण का मार्ग है' ये चार आर्य सत्य प्रस्थापित किए। चार आर्य सत्य का उपदेश भगवान बुद्ध ने वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाम में पंच वर्गीय भिक्षुओं को संबोधित करते हुए दिया था। इस प्रथम सुत्त को धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र के नाम से जाना जाता है।

**दुख है**—दुःख से मुक्ति के लिए प्रथम आवश्यकता है, दुःख स्वीकार करने की। जो मनुष्य दुःखी होते हुए भी यह नहीं जानता कि वह दुःखी है, वह मनुष्य दुःख से मुक्त नहीं हो सकता। दुःख स्वीकारना ही प्रथम आर्य सत्य स्वीकारना है। सभी प्राण्यिों के दुःख एक ही प्रकार के हैं। दुःख की उत्पत्ति भी सभी की एक ही प्रकार की है। भगवान बुद्ध कहते हैं, भिक्षुओं ! जन्म लेना भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, रोग भी दुःख है, मृत्यु भी दुःख है। अप्रियों से मिलना भी दुःख है, प्रियजनों से विछुड़ना भी दुःख है, इच्छा होने पर किसी चीज का न मिलना भी दुःख है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ये पांच अपादान स्कंध कहे जाते हैं संक्षेप में पांच अपादान स्कंध ही दुःख हैं। जन्म के साथ ही दुःख का प्रारंभ है, शारीरिक रोग के लिए तो हम दवाई लेकर निजात पा सकते है, किन्तु बुढ़ापे के बारे में भगवान कहते हैं, यह सबसे बड़ा रोग है, इसे सही ज्ञान के आधार पर ही हम पार कर सकते हैं, दुःख को स्वीकार करके ही हम दुःख के सागर को पार कर सकते हैं।

**दुःख का कारण है**—यह दूसरा आर्य सत्य है। इसे दुःख समुदाय आर्य सत्य भी कहते हैं। कारण और प्रभाव से चलने वाली सृष्टि में दुःख भी कारण के पहिये पर ही चलता है। प्रत्येक दुःख का कारण होता है। यह अलग बात है कि हम दुःख का कारण जानते हैं या नहीं। किन्तु कारण तो होता ही है। दुःख का समुदाय है। भिक्षुओं से भगवान कहते हैं, भिक्षुओं! यह दुःख समुदाय आर्य सत्य है। राग और प्रीति से युक्त बार-बार जन्म दिलाने वाली है, उत्पन्न हुए स्थानों से अभिनंदन कराने वाली तृष्णा है। भगवान ने तृष्णा को ही सभी दुखों की जड़ बताया है। तृष्णा तीन प्रकार की बताई है। विषय भोग से संबंधित तृष्णा को काम तृष्णा कहा गया है। बार-बार जन्म लेने की इच्छा को भव तृष्णा तथा मैं न मरूँ, अमर रहूँ उसे विभव तृष्णा कहा गया है।

**दुःख निरोध**—जब दुःख है, उसका कारण है तो उसका निवारण भी होना चाहिए उसका निरोध भी होना निश्चित है। भगवान ने इस सत्य को भी साक्षात करने के बाद कहा, भिक्षुओं ! यह दुःख निरोध आर्य सत्य है जो उसी तृष्णा का सर्वथा विराग है। दुःख का निरोध है, दुःख का रुक जाना है, दुःख का त्याग है, प्रति निस्सर्ग है, निनास है, मुक्ति है तथा दुःख का छुटकारा है। दुःख से छुटकारा है यह मानना ही दुःख से छुटकारा पाने के मार्ग की प्रथम सीढ़ी है जिसका भगवान ने स्वयं साक्षात्कार किया है।

**दुःख निरोध ( गमिनि-प्रतिपदा आर्य सत्य )**—यह भगवान का चौथा आर्य सत्य है जिसमें भगवान दुःख से मुक्ति पाने का मार्ग भी बताते हैं। इस मार्ग को अप्टांगिक मार्ग या मध्य मार्ग भी कहा जाता है। भगवान भिक्षुओं को सभी अतियों से सावधान करते हुए उनसे बचने की सलाह देते हैं तथा अतियों से बचकर मध्य मार्ग पर चलने का मार्ग भी बताते हैं। भगवान कहते हैं, भिक्षुओ! यह दुःख-निरोध-गमिनि-प्रतिपदा आर्य सत्य है। सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मणि, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि, यही आर्य अप्टांगिक मार्ग है।

भगवान ने कहा, भिक्षुओ! एक तरह तो प्रब्रजित को, हीन, साम्य, पृथक जनों को योग्य, अनर्थों से युक्त, काम वासनाओं में लिप्त होने से बचना चाहिए तथा दूसरी तरफ अनर्थों से युक्त बातों से बचकर, भगवान द्वारा बताए गए मध्य मार्ग पर चलना चाहिए।

❑

# ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय

–चण्डीदत्त शुक्ल

'श....श....श शायद कोई बच्चा रो रहा है!' नीरू ने कहा। रात का सन्नाटा चीरती करुण चीख सुन नीमा के कदम यकायक रुक गए। चारों ओर छिटकी चांदनी के बीच नीमा ने देखा....तालाब के किनारे धरती पर पड़ा एक नवजात शिशु जोर-जोर से बिलख रहा है। तेज डग भरकर नीमा ने बच्चे को गोद में उठा लिया।

मंद स्वर में नीरू ने कहा, 'लगता है, कोई अभागिन लोक-लाज के डर से इस मासूम को अकाल मृत्यु का शिकार होने के लिए छोड़ गई है।' नीरू ने बच्चे को सीने से लगा लिया और इसी के साथ 1455 विक्रमी संवत, ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा की रात में जन्मे बेसहारा बालक कबीरदास को सहारा मिल गया, दंपति नीरू और नीमा का।

स्वामी रामानंद की खड़ाऊं की चोट खाकर पांच साल के अल्पवयस्क कबीर ने रामनाम से परिचय प्राप्त किया और एक बार, जो राम से लागी लगन, तो फिर जब तक सांस रही, ये प्रीति नहीं छूटी। लोई से कबीर ने विवाह किया, एक पुत्र और पुत्री कमाल व कमाली को जन्म दिया। गृहस्थी में रहते हुए भी कबीर का मन फकीरी में लग गया। गृहस्थी से भागे नहीं कबीर, लेकिन उसके तारों में उलझे भी नहीं।

कबीर ने किसी स्कूल में पढ़ाई नहीं की। वे खुद कहते हैं, 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहि हाथ'। ज्ञान मिला संतों के संग से और अंतः चेतना के जागरण से। ओशो कहते हैं, 'कबीर बिना पढ़े-लिखे हैं, लेकिन जीवन के अनुभव से उन्होंने सार पा लिया है।' सच है, जिसने डगर-डगर, नगर-नगर तालीम ली, उसके ज्ञान की थाह भला कौन पाएगा ? इसी ज्ञान से कबीर ने ढाई अक्षर का मार्ग 'प्रेम' प्रशस्त किया और कहा, प्रेम ही हर मुश्किल का हल हैं 'संतुष्ट हुए, तो समझो खत्म हो गए।' ऐसा कहने का साहस जो करे, पढ़ा-लिखा न हो, फिर भी कथित पंडितों-मौलवियों के रूढ़-रिवाजों से लोहा ले, वह कबीर ही तो हो सकता है। जीवन की चेतना का विकास चाहिए, तो असंतुष्ट होना ही पड़ेगा। दरअसल, कबीर ने यह मूलमंत्र प्रेम की साधना के संदर्भ में ही दिया है। वे कहते भी हैं, **छिनहि चढै, छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय। अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावे सोय॥** यानी चिरंतन प्रेम। ईश्वर से....आम जन से और स्वयं से भी। यह साधना के उच्च शीर्ष तक पहुँचने का साधन है।

कबीर आज जन-जन की आवाज बन सके, तो केवल इसीलिए, क्योंकि वे वक्त से आगे की सोच बुनने, कहने, व्यक्तित्व में उतारने और निडर होकर पाखंड पर प्रहार करने का साहस संजो सके थे। ईश्वर प्राप्ति के लिए बाह्य साधनां का निर्मम आलोचना करने वाले कबीर स्पष्ट कहते थे, 'भक्ति करने के लिए सब स्वतंत्र हैं। इस राह में ऊँच-नीच का भेद करने वाला कोई कौन होता है ?'

कबीर के निर्गुण पंथ में अद्वैतवाद वेदांत, इसलाम का एकेश्वरवाद, वैष्णवों का भक्तिवाद, नाथ संप्रदाय का हठयोग और सूफियों का प्रेम मार्ग सभी कुछ तो समाहित है। तभी तो राम की प्यारी बहुरिया बनकर उसके साथ विवाह रचाने वाला समर्पण बोध भी कबीर में नजर आता है और वे **'प्रेम गली अति सांकरी, तामै दो न समाय'** के माध्यम से अहंकार को फटकार देना भी नहीं भूलते। कहना न होगा कि गांव की चौपाल से अट्टालिकाओं तक कबीर के स्वर मन से सुने-गुने जाते हैं और कबीरपंथी गाते ही जा रहे हैं, **'जरा हल्के गाड़ी हांको, मेरे राम गाड़ी वाले...।'**

जन जागरण और वैचारिक उद्धार आंदोलन का प्रारंभ करने वाले कबीर ने पंजाबी, खड़ी बोली, अरबी, फारसी समेत पूर्वी क्षेत्र की बोलियों में अपनी बात कही है, तभी वे सहज और सुगम भी हैं। स्वामी आनंद गौतम मानते हैं, 'कबीर के काव्य में प्रेम का फाग है, तो क्रांति की आग भी है। कबीर का आगमन, तो आग की एक लपट जैसा है। वे जागरण का शंखनाद ही नहीं करते, वरन् झकझोर कर जगा ही डालते हैं।' उन्होंने कबीर को जिंदगी की चादर बुनने वाले बुनकर की संज्ञा दी है।

कबीर के बारे में ओशो का नजरिया भी प्रेम की व्याख्या के संदर्भ में देखना ठीक होगा। वे कबीर को समझने के लिए तर्क की नहीं, बल्कि श्रद्धा की जरूरत पर जोर देते हैं, 'बहुत श्रद्धा से ही कबीर समझे जा

सकते हैं....कबीर को पीना होता है, चुस्की-चुस्की.. भाषा पर अटकोगे, तो चूकोगे, भाव पर जाओगे, तो पहुँच जाओगे।' वे, तो भावविभोर होकर यहाँ तक कह देते हैं, 'कबीर का एक-एक शब्द बहुमूल्य है। उपनिषद् फीके पड़ जाते हैं कबीर के सामने। बीज की तरह उनके वचन हैं, बीजमंत्र की भांति।'

सच है, कबीर जैसा कोई नहीं, तभी तो परमात्मा तक कबीर की न्यौछावर लेते नहीं थकते।

**मन ऐसो निरमल भया जैसे गंगा-नीर ।**
**पीछे-पीछे हरि फिरै, कहत कबीर-कबीर ॥**

कबीर की उलटबानी समझना आसान नहीं, इसलिए उनका विरोध भी जमकर हुआ। कबीर ने भी करारा जवाब दिया। मसलन-पितरों को तर्पण करने की परंपरा पर व्यंग्य। श्राद्धकर्म में लगे एक ब्राह्मण के लोटे से जल डालकर अपना ढाई कोस दूर स्थित बाग सींचने का काम करके कबीर ने यही तो स्थापित किया था, 'जब ढाई कोस दूर इस पानी की धार नहीं जा सकती, तो पितरों तक क्या पहुंचेगी ?' और तो और, जब मृत्यु की बात चली, तो काशी छोड़कर कबीर मगहर चले गए, जहाँ के बारे में विख्यात था कि वहाँ मृत्यु होने पर स्वर्ग नहीं मिलता।

खैर, अब एक और जरूरी प्रसंग-कुछ साल पहले मगहर में बिहार कबीर मठ के महंत आचार्य गंगाशरणदास शास्त्री आए थे। उन्होंने स्पष्ट किया था, 'कबीर मूर्ति पूजा के विरोधी नहीं थे। वे उसकी तौर-तरीकों से असहमत थे, बल्कि यह कहें कि पाखंड से, तो ज्यादा सटीक होगा।'

और यह भी कहा, 'यदि छह सौ साल तक कबीर की सीख प्रासंगिक बनी हुई है, तो इससे हर्षित होने की बजाय सोचना चाहिए कि उस सीख से लक्षित बुराई, विसंगति या भूल इस बीच सुधारी नहीं गई है।' सच है, क्या अब भी भगवान तक अपनी बात पहुँचाने के लिए लोग-बाग 'बांग' नहीं दे रहे! क्या कबीर से सबक लेने का अभी समय नहीं आया ? ❑

## ग्राहकों से क्षमा-याचना

*विवेक शिक्षा के ग्राहकों को यह सूचित करते हुए हमें अपार खेद हो रहा है कि कतिपय अपरिहार्य कारणों से हम मई २००५ से अगस्त २००५ तक विवेक शिक्षा के अंकों का प्रकाशन नहीं कर सके। पत्रिका को नियमित करने के लिए हम सितम्बर २००५ से इसका प्रकाशन कर रहे हैं। प्रकाशन में इस व्यतिक्रम के कारण पाठकों को हुई असुविधा के लिए हम क्षमा-याचना करते हैं। भविष्य में इसे नियमित रूप से प्रकाशित करने का हम प्रयास करेंगे। हमें विश्वास है कि पाठकगण हमारी इस भयंकर त्रुटि के लिए क्षमा प्रदान कर अपना सहयोग हमें प्रदान करते रहेंगे।*

*विवेक शिखा का अगला अंक*
*"स्वामी रंगनाथानन्द स्मृति अंक" होगा।*

**—सम्पादक**

# ज्ञानियों के राजाधिराज श्री ज्ञानेश्वर महाराज

–श्रीमति नलिन कुलकर्णी

महाराष्ट्र के संत शिरोमणि श्री तुकाराम महाराज जिनका वर्णन इन शब्दों में करते हैं–''ज्ञानियों के राजा साक्षात् गुरुदेव ऐसे आपको ज्ञानदेव नामसे संबोधति करते हैं।' उनका श्रेष्ठत्व वर्णन करते समय वे कहते हैं, ''ब्रह्मादिक देवता भी आपके आश्रम में रहते हैं, आपकी सेवाएँ करते हैं।' आगे चलकर वे कहते हैं, ''मैं तो आपके पाँवकी जूती हूँ अतः मेरा स्थान आपके चरणतले हैं।'' श्रीएकनाथ महाराज कहते हैं, ''आपके रूपमें इस धरातल पर साक्षात् कैवल्य, मूर्तिमान मुक्ति, घनीभूत मोक्ष अवतरित हुआ है। मेरे ज्ञानोबा साक्षात् ओंकार हैं। 'श्रीज्ञानेश्वर महाराज संतों के मुकुटमणि हैं। महाराष्ट्र में भागवत धर्म का पुनरूज्जीवन करके, 'भक्ति को ज्ञान की दृष्टि तथा ज्ञान को भक्ति का स्नेह प्रदान करके श्रेष्ठतम कार्य किया है। कहा जाता है, ''ज्ञानदेव महाराज ने भागवत धर्म की नींव डाली और तुकाराम महाराज भक्ति मंदिर के कलश है।

**पूर्वज, जन्म तथा बाल्य–**

श्रीज्ञानदेव महाराज के पूर्वज मराठ वाडे के सुप्रसिद्ध शहर पैठणकी बगल में, गोदावरी नदी के तट पर बसे हुए आपे गाँव के निवासी थे वे उस गाँव के कुलकर्णी थे। ज्ञान देव के दादाजी गोविदपंत तथा दादी निराई को गहनीनाथ से उपदेश, अनुग्रह प्राप्त हुआ था। उनके पुत्र विठ्ठलवलपंतजी ने शास्त्राध्ययन किया और तीर्थयात्रा करने निकल पड़े। घमते-घूमते वे महाराष्ट्र के आलंदी गाँव पहुँचे वहाँ सिद्धोपंत कुलकर्णी जी की सुपुत्री रूक्मिणी से उनका विवाह हुआ। कुछ दिनों के बाद वे रूक्मिणी को लेकर आपे गाँव लौट आये। विवाह करने में विठ्ठलपंत को कोई रुचि नहीं थी, अतः प्रपंच करने में भी उन्हें कोई रुचि नहीं लगी। वैराग्य से उनका मन ओत-प्रोत हुआ और एक दिन वे घरबार का त्याग कर काशी चले गये। वहाँ उन्होंने विवाह की बात छिपाकर रामानन्द स्वामी से संन्यास लिया। पति के चले जाने के बाद रूक्मिणी जी असहाय होकर आलंदी-मायके चली आई। उसने वहाँ कठोर तपस्या आरंभ की। उपवास रखना, सिद्धेश्वर का नित्य दर्शन और वहाँ के सुवर्ण पिप्पल की नित्य अखंड परिक्रमा आरंभ की। भगवान की प्रेरणा से चमत्कार हुआ और विठ्ठलपंत के संन्यास गुरु स्वामी रामानन्द, तीर्थयात्रा करते हुए आलंदी आये। रूक्मिणी ने उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने 'पुत्रवती भव' आशीर्वाद दिया। रूक्मिणी ने उन्हें अपनी जीवन कथा सुनाई। स्वामी रामनन्दजी ने तुरन्त काशी लौटकर विठ्ठलपंत को आनंदी जाकर फिर से प्रपंच करने की आज्ञा दी। अनिच्छा से विठ्ठलपंत आलंदी लौट आये और उन्होंने नये सिरे से प्रपंच का आरंभ किया।

संन्यासी कर प्रापंचिक होना यह तत्कालीन समाज धारणानुसार अक्षम्य भूल थी, गुनाह था। उनपर निंदा, उपहास, तिरस्कार आदि की लोगों ने बौछार की। उनका हुक्का-पानी बंद किया। इस बीच उन्होंने चार अपत्यों को जन्म दिया, वे ही हैं निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई। इनकी जन्म तिथियों के संबंध में अनेक मतभेद हैं लेकिन उनमें दो साल का अंतर है यह निश्चित है। आज प्रमाण मानी गयी उनकी जन्म तिथियों इस प्रकार है।–निवृत्तिनाथ १२७३ ईसवी, ज्ञानदेव १२७५ ईसवी, सोपानदेव १२७७ ईसवी और मुक्ताबाई १२७९ ईसवी। इस प्रकार चारों एकही ईसवीं में अनंत में लीन हो गये। ज्ञानदेव तथा सोपानदेव १२९६ में समाधिस्थ हुये और १२९७ ईसवी में निवृत्तिनाथ और मुक्ताबाई अनंत में लीन हो गये।

विठ्ठलपंत ब्राह्मण होने के नाते अपने बेटों का जनेऊ बंधन करना चाहते थे लेकिन आलंदी के ब्राह्मणों ने इसे इन्कार किया। इन सब बातों से ऊबकर विठ्ठलपंत अपने परिवार के साथ तीर्थयात्रा करने त्रयंबकेश्वर पहुँचे। एक दिन वे सब ब्रह्मगिरिकी परिक्रमा कर रहे थे। अचानक एक शेर उनके सामने उपस्थित हुआ। उससे बचने के प्रयत्न में निवृत्तिनाथ अन्य सभी से बिछुड़ गये। वे अनायास ही एक गूफा में आ पहुँचे। वहाँ नाथपंथ के महात्मा गहनीनाथ तपस्या कर रहे थे। उन्होंने कृपावन्त होकर निवृत्तिनाथ को नाथपंथ की दीक्षा दी, कृष्णभक्ति का उपदेश किया और मस्तक पर वरदहस्त रखा। मानो इसके हेतु, वह शेर उनके मार्ग में उपस्थित हुआ था। अनंतर सब परिवार की भेंट हुई और वे आलंदी लौट आये।

आलंदी के महन्तों का इनलोगों की ओर देखने और व्यवहार का रूख कोई बदला तो नहीं ही था लेकिन और तीव्र हो गया था। अंत में विठ्ठलपंत आलंदी के ब्रह्मवृन्द की शरण में गये और उन्होंने प्रायश्चित की माँग की। निष्ठुर ब्रह्मवृन्द ने उन्हें देहान्त प्रायश्चित बताया और उन अनासक्त तथा विरागी माँ-पिता ने अपनी संन्तान

की भलाई के लिये प्रयाग में त्रिवेणी संगम पर आत्म समर्पण किया। इन अनाथ, बहिष्कृत बच्चों की जिम्मेदारी माँ और पिता दोनों के रूप में निवृत्तिनाथ ने ली।

माँ-पिता को प्रायश्चित देने पर भी ब्रह्मवृन्द को शान्ति नहीं मिली, उन्होंने उन चारों का बहिष्कार कायम रखा था निंदा, अपमान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। पैठण उन दिनों दक्षिण की काशी माना जाता था। चारों बालक शुद्धिपत्र माँगने वहाँ पहुँचे। लेकिन बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें कोई मार्ग नहीं दिखाई दिया क्यों कि 'संन्यासी का प्रपंच' यह घटना पहली ही थी। अतः विद्वान पण्डितों में चर्चा-बहस होने पर यही निर्णय हुआ कि 'तुम्हारा कुल भ्रष्ट है अतः कोई प्रायश्चित नहीं। आपको मौंलिबंधन का कोई अधिकार नहीं।' कहा जाता है कि किसी ब्राह्मण के उपहास का प्रत्युत्तर देते समय श्रीज्ञानदेव ने भैंसे के मुख से वेद पठन कराने का चमत्कार किया था। श्रीज्ञानदेव की तर्क विवाद की श्रेष्ठता देखकर तथा इस चमत्कार का प्रत्यक्ष अनुभव करने पर पैठणवासी प्रभावित हुए। उनका श्रेष्ठत्व मानते हुआ ब्रह्मदेव नामके विद्वान ब्राह्मण ने उन्हें १२८७ ईस में शुद्धिपत्र प्रदान किया।

शुद्धि पत्र तो प्राप्त हुआ लेकिन अब उन्हें व्यावहारिक संस्कारों की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। वे लौटते समय नेवासे आये। उनके गुरु श्रीनिवृत्तिनाथकी आज्ञा से उन्होंने एक देवालय में आज जिसे ज्ञानेश्वरी कहते हैं उसका उपस्थित लोगों के समक्ष कथन किया। श्रीज्ञानदेव महाराज ने लोगों के सामने गीता का मराठी में विवेचन किया और उनके प्रथम शिष्य सच्चिदानंद बाबा ने उसे लिपिवद्ध किया। ज्ञानेश्वरी यह भगवद्गीता, जो श्रीकृष्ण ने अर्जुन के विषाद ग्रस्त होने पर प्रत्यक्ष रणक्षेत्र में कही थी इसका मराठी में विवेचन है। एक जमाने में संस्कृत ही बोली की भाषा होने के कारण गीता समझना आसान था लेकिन काल प्रवाह में बोलचाल की भाषाओं का आधिक्य हुआ और संस्कृत में ग्रथित धर्म, साहित्य, अध्यात्म, ज्ञान से सामान्य लोग वंचित रहने लगे। उन्हें बोली भाषा में लाना आवश्यक था। ज्ञानदेव स्वयं अत्यंत श्रेष्ठ योगी, ज्ञानी तथा भक्त होने के नाते उनकी आध्यात्मिक अनुभूतिका धन तथा उनकी प्राज्ञा का, प्रतिभा का स्वरूप अलौकिक था। अतः उनके सद्गुरु श्रीनिवृत्तिनाथ महाराज ने उन्हें अपने स्वयं के तत्त्वज्ञा का दर्शन करानेवाले ग्रंथ रचना को सूचना दी। ज्ञानेश्वरी के बाद उन्होंने 'अमृतानुभ' जैसा दार्शनिक ग्रंथ लिखा। कहा जाता है कि ज्ञानेश्वरी द्वारा उन्होंने मृतप्राय महाराष्ट्र को, व्यक्ति के सुप्त मन को जागृत किया। विद्वानों के मतानुसार अमृतानुभव तत्त्वज्ञान का निचोड़ है।

उन्हें ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त थी लेकिन उसका प्रयोग उन्होंने न के बराबर किया है। एक आख्यायिका के अनुसार १४०० साल की उम्र वाले योगी चांगदेव से मिलने वे जड़ भित्ती पर बैठकर गये थे। चांगदेव योगी होने के कारण मृत्यु को चकमा देकर १४०० साल तक जिये। वे शेरपर सवार होकर तथा हाथ में साँप का चाबुक लेकर घूमते थे। ज्ञानदेव की कीर्ति सुनकर उनका अहंकार जाग उठा और उन्होंने ज्ञानदेव से मिलने का निश्चय किया। पत्र लिखने बैठे तो संभ्रमित हुए कि कैसे संबोधित किया जाय ? प्रणाम करें तो उम्र में अत्यंत छोटे हैं। और आशीर्वाद लिखे तो वे ज्ञानी हैं। अतः कोरा कागज ही पत्र के रूप में भेज दिया। इस कोरे पत्र का उत्तर ज्ञानदेव ने ६५ श्लोकों में दिया। वही चांगदेव पासष्ठि नाम से प्रसिद्ध है। चांगदेव शेर पर बैठकर अपने अनगिनत शिष्यों के साथ ज्ञानदेव से मिलने गये। उस समय ये चारों एक दीवार पर धूप खाते बैठे थे। जब ज्ञान देवने सुना कि वे शेर पर बैठकर आ रहे हैं तो उन्होंने उसी जड़ दीवार से कहा 'चलो बहन जी! हम मिलने जाएँगे।' दीवार पर बैठे इनको देखकर चांगदेव महाराज का अहंकार चूर-चूर हो गया।' वे चारों के चरणों में समर्पित हुए। १४०० साल की उम्र वाले चांगदेव महाराज ने छोटीसी मुक्ताईका शिष्यत्व ग्रहण किया।

इसके अनंतर वे पंढरपुर गये। वहाँ नामदेवादि संतों का संग हुआ। भक्ति प्रेम का सागर उमड़ पड़ा, सब भक्ति के रंग में रंग गये। यह 'संतमेला' तीर्थयात्रा करने चल पड़ा। सन्त नामदेव ने अपने अभंगों में इस तीर्थयात्रा का सुरस वर्णन किया हैं इनका सारा समय भजन, गायन, कीर्तन, चर्चा में ही बीतता था। ये सारे संत महात्मा १२९६ में, कार्तिक शुद्ध १५ को पंढरपुर लौटे। बड़े समारोह के साथ तीर्थयात्रा की समाप्ति हुई। यह उनके जीवन का अंतिम समारोह था। ज्ञानदेव महाराज को अवतार समाप्ति की धुनने भक्ति प्रपंच से भी अलिप्त किया। एक दिन उन्होंने संजीवन समाधिका निश्चय प्रकट किया। सब हक्के-बक्के हुए। वे आलंदी लौट आये। समाधि स्थान निश्चित हुआ। सुरंग का निर्माण हुआ। आसन सिद्ध किया गया। उस पर तुलसी-पत्र बिछाए गये। सारे संत उनके प्रिय पथ प्रदर्शक ज्ञानोबा के वियोग की कल्पना से आकुल हुए। कार्तिक वदी १३,१२९६ ईसवी, ज्ञानोबाने संजीवन समाधि ली। उन्होंने अपने गुरु, माता, पिता, भ्राता सर्वस्व निवृत्तिनाथ के चरण छुये, आशीर्वाद पाया। कहा जाता है कि एक ओर साक्षात् विठ्ठल और दूसरी ओर निवृत्तिनाथ ने उन्हें पकड़कर समाधि स्थान तक पहुँचाकर आसान पर विठाया।

स्वयं निवृत्तिनाथ महाराज ने गूँफा का द्वार शिला रखकर बंद किया। केवल २१ वर्ष की आयु में महान कार्य करके वे समाधिस्थ हुए।

**ज्ञानदेव महाराज की ग्रंथ रचना–**

हमने देखा है कि उन्होंने ज्ञानेश्वरीकी रचना की जो कथित है और सच्चिदानन्द बाबा ने लिखा। अमृतानुभव उनका स्वतंत्र दार्शनिक ग्रंथ है। कहा जाता है कि इसमें कोरा तत्वज्ञान है। इसमें शंकर वेदान्त के माया वाद का निरास करके, जीव, जगत् तथा जगदीश्वर तीनों एक ही हैं यह पूर्णाद्वैत का सिद्धान्त आत्मविद्या के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। चांगदेव पासष्ठि यह कोरे पत्र का उत्तर है। ऐसा लगता है कि इसमें अमृतानुभव के सात्विक विचार अधिक सूत्रबद्ध रूपसे प्रस्तुत किये गये हैं। डॉ० तूल पुले जी कहते हैं, "अमृतानुभव यह ज्ञानेश्वरी का सार है और चांगदेव पासष्टी अमृतानुभव का सार है।" ज्ञानदेव महाराज ने अभंग रचना भी की है। अभंग के प्रमुखतः हरिपाठ, रूपकात्मक तथा विरहिणी ये तीन प्रकार हैं। हरिपाठ वारकरी लोगों की संध्या मानी जाती है। वे उसका नित्यपाठ करते हैं। उनके एकानेक अभंग घरघर में गाये जाते हैं तथा बड़े-बड़े गायकों ने भी इनका गायन किया है और प्रसिद्धि पायी है। अभंग में विठ्ठल प्रेम ओतप्रोत है। उनके अन्य अभंगों में और विशेषतः 'विरहिणी' में भक्ति की तीव्रता, भक्त के मनकी तड़पन, आत्यंतिक विकलता तथा व्याकुलता प्रस्फुटित हुई है और ईश्वर मिलनके शाश्वत सुख की अनुभूति व्यक्त हुई है।

ज्ञानदेव महाराज को भागवत धर्म का निवनिर्माता कहा जाता है। ज्ञानेश्वर महाराज का लोकरक्षण तथा लोकद्धार का कार्य उनके 'भूतदयावादी संत' इस भूमिका से ही निर्माण हुआ है। ज्ञानदेव महाराज ने वारकारी संप्रदाय के लिये एक तत्त्वज्ञान की ठोस नींव निर्माण की। गुरु परम्पराके अनुसार ज्ञानदेव नाथपंथी थे अतः उस पंथ के अनुसार योग-साधना, अद्वैत निष्ठा, दलितो द्धार तथा देशभाषा का माध्यम इनकी धरोहर उन्हें प्राप्त हुई। परिणाम स्वरूप उन्होंने स्त्री तथा शूद्रों की धर्म श्रद्धाको उच्च विचारों को, आधार प्रदान किया। उनका कहना है कि स्वधर्माचरण भक्तियुक्त अंतःकरण से करते समय घरबार का त्याग करने को कोई आवश्यकता नहीं।

समाज अध्यात्मयनीति से युक्त बने तथा सारे समाज में ब्रह्मविद्या का प्रसार हो यही उनकी एकमेव मनीषा थी। ज्ञानेश्वर महाराज ने सारे परमार्थ मार्ग का निर्देश 'क्रमयोग' शब्द से किया हैं। कर्म, वैराग्य, ज्ञान तथा भक्ति ये क्रमयोग की एक से बढ़कर एक प्रगत सीढ़ियाँ हैं। उनकी भक्ति भी ज्ञानरूप भक्ति है। भक्ति का माने है परब्रह्म से एकात्म भाव का अनुभव। यह भाव एकांएक नहीं प्राप्त होता। उसका भी क्रम विकास होती है। उनके क्रमयोग में कर्म, योग, भक्ति इन तीनों निष्ठाओं की एकरूपता होती है। इन सब अवस्थाओं से गुजरने पर ही ईश्वर दर्शन या साक्षात्कार होता है।

सौजन्य, कारुण्य, दयालुता, क्षमाशीलता, औदार्य, विशालता, सर्वत्र समदृष्टि, मधुरता, सहानुभाव, प्रेम स्नेह, कवित्व, असामान्य आध्यात्मिक अधिकार आदि अनगिनत अद्भुत गुणों से उनका व्यक्तित्व परिपूर्ण है। उनके अध्यात्म पर ग्रंथ महाराष्ट्र शारदा का लावण्य भण्डार है। उनमें निहित विपुल साहित्य गुण उनकी अलौकिक प्रतिभाके निदर्शक हैं।

डॉ० प्र० न० जोशीजी अपनी आदरांजली में कहते हैं, संतत्व तथा कवित्व के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा द्वारा अद्वितीय यश प्राप्त करनेवाले श्रेष्ठ विभूतियों में श्री ज्ञानेश्वर महाराज का एकमेव नाम पाया जाता है। गत सात सौ सालों में उनके समान अलौकिक पुरुष का निर्माण ही नहीं हुआ। सारे संतों के मन में तथा सामान्य से सामान्य मनुष्य के मनमें उनके प्रति आदर, श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, विश्वास है। वे उनकी "ज्ञानेश्वर माउली" हैं।

हरि : ऊँ तत् सत् ।

❑

*मनुष्य-जीवन का उद्देश्य मत भूलना। पशु के समान खाकर, नींद सोकर, गप्पें मारकर किसी भी तरह ये चंद गिने हुए दिन बिता देने के लिए यह जीवन नहीं है। इस जीवन का उद्देश्य है भगवान् लाभ। जब मनुष्य-जन्म मिला है, तो फिर पृथ्वी के सारे भोग-सुख तुच्छ जानकर भगवान् को पाने के लिए, सत्य की उपलब्धि के लिए दृढ़ संकल्प ले लो–चाहे प्राण जायँ या रहें।*

**–स्वामी ब्रह्मानन्द**

१२ अगस्त, तुलसी जयन्ती

# हम तो चाखे प्रेम-रस, पत्नी के उपदेश

-डॉ० रवीन्द्र नागर

महाकवि तुलसीदास का जन्म संवत् १५५४ में श्रावण शुक्ल सप्तमी को बांदा में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। वे मूल नक्षत्र में पैदा हुए थे। अशुभ जानकर जन्म के समय ही उनका त्याग कर दिया गया। एक दासी ने इन्हें पाला-पोसा। कुछ वर्षों बाद उसकी भी मृत्यु हो गई। बालक तुलसी के अशुभ ग्रहों के कारण कोई भी इनको अपने पास रखना नहीं चाहता था।

तुलसीदास का प्रारंभिक नाम रामबोला था। बचपन में जब ये घर से निकले तो इनकी दशा अत्यंत दयनीय थी। यदि कोई इन्हें थोड़ा भी अन्न दे देता था तो वे उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के बराबर समझते थे। तुलसीदास जी साधु-संतों के संग में आने लगे और विद्या-प्राप्ति करते हुए सूकर क्षेत्र में पहुंचे। वहाँ पर उन्होंने गुरु के मुख से रामकथा सुनी-

***मैं पुनि निज गुरु मन सुनि, कथा सो सूकर खेत।***
***समुझि नहीं तस बालपन, तब अति रहे सचेत।।***

किन्तु गुरु सुनाते ही रहे और बार-बार सुनाया-

***तदपि कहिं गुरु बारहिं बारा।***
***समुझि परि कछु मति अनुसारा।।***

वाराणसी आकर तुलसीदास ने शेष सनातन नाम के विद्वान से वेद-शास्त्रों की विद्या प्राप्त की और कथावाचक बन गए। इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ। कहा जाता है कि अपनी स्त्री पर वे बहुत आसक्त थे। एक बार इनकी स्त्री इनके बिना पूछे ही मायके चली गई। पत्नी-विरह उनसे नहीं सहा गया। वे भी ससुराल चल दिए। वहाँ पहुँचने पर उनकी पत्नी रत्नावली ने कहा-

***लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ,***
***धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ।***
***अस्थि-चर्ममय देह मम, तामे जैसी प्रीति,***
***तैसी जो श्री राम महं, होति न तो भवभीति।।***

स्त्री की इस फटकार को सुनकर उनके ज्ञान-चक्षु खुल गए और प्रयाग आकर साधु हो गए। उन्होंने लिखा है-

***हम तो चाखे प्रेम-रस, पत्नी के उपदेश।***

देशाटन करते हुए काशी से अयोध्या आए। यहीं 'तुलसी चौरा' पर इन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना की।

गोस्वामी जी ने अपनी पत्नी से विरक्त होकर तीर्थाटन पर निकल पड़े। सहस्त्रों मील की पैदल यात्रा कर अनेकों तीर्थों के दर्शन किए। उनकी रचनाओं के आधार पर ही प्रतीत होता है कि उनका चित्त विशेषरूप से चित्रकूट में रमा था। तीर्थ यात्रा के क्रम में वृंदावन भी पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने कृष्ण की मूर्ति देखकर यह दोहा पढ़ा-

***का बरनौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।***
***तुलसी मस्तक तब नबे, धनुष-बाण लेउ हाथ।***

पहले गोस्वामी जी 'हनुमान फाटक' पर रहा करते थे, किन्तु मुसलमानों के उपद्रव के कारण 'गोपाल मंदिर' में चले गए। वहाँ गोसाइयों से विरोध हो जाने पर 'अस्सी घाट' आकर रहने लगे। जीवन के अंतिम दिनों में वातरोग ( गठिया ) से पीड़ित रहे। उस ही क्लेश में इन्होंने 'हनुमान बाहुक' की रचना की। जान पड़ता है इससे इनकी पीड़ा कुछ शांत हो गई थी।

तुलसीदास जी का प्रयाण श्रावण तृतीया, दिन शनिवार १६८० सम्वत् में हुआ। **तुलसीदास की रचनाएँ-** यों तो तुलसीदास जी के नाम से अनेक रचनाएँ हैं, लेकिन उनमें १३ ग्रंथ ही प्रमाणित माने जाते हैं, यथा-कवितावली, दोहावली, गीतावली, रामचरितमानस, विनयपत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती-मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली, रामाज्ञा प्रश्नावली और हनुमान बाहुक।

रामचरितमानस तुलसीदास का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है।

तुलसीदास ने 'मानस' की रचना एक महाकाव्य के रूप में की है जीवन के सभी पहलुओं पर कवि ने प्रकाश डालने की भरसक कोशिश की है भाव और आदर्श आदि में मापदंड के अनुसार 'रामचरितमानस' साहित्य-गगन की श्रेष्ठतम रचना कही जा सकती है। 'रामचरितमानस' की रचना उन्होंने १६३१ में प्रारंभ की थी-

*'सम्वत् सोरह के इकतीसा, कहों कथा हरि-पद धर सीसा।*
*नवमी भीम बार मधुमासा, अवधपुरी यह चरित-प्रकाशा।'*

लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी-काव्य-गगन के सबसे अधिक दीप्तिमान नक्षत्र हैं। आज उनकी काव्य प्रतिभा और विद्वत्ता का प्रभाव देशकाल की सीमा का अतिक्रमण कर सार्वकालिक और सार्वभौम होकर सर्वव्याप्त हो गया है। उनकी कृतियाँ उत्कृष्ट कला-कौशल के कारण हिन्दी-काव्य-गगन में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती हैं। ☐

# रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज का प्रवास

**छपरा :** स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम में रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलुड़ मठ के उपाध्यक्ष श्रीमत स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज का ४ अप्रैल २००५ से १० अप्रैल २००५ तक एक उत्सवीय प्रवास हुआ। महाराज का छपरा आश्रम में यह प्रथम प्रवास था। ४ अप्रैल को उनका आगमन हुआ। उसी दिन महाराज ने आश्रम में नव निर्मित १२ कमरों के साधु-निवास का उद्घाटन किया। ६, ८ और ९ अप्रैल को महाराज ने प्रायः १५० जिज्ञासु भक्त नर-नारियों को दीक्षा प्रदान की। उन्होंने ९ अप्रैल को आश्रम में आयोजित धर्म सभा को भी सम्बोधित किया और उपस्थित श्रोताओं से श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द के जीवनादर्शों को जानने तथा उन्हें जीवन में उतार कर स्वयं को आध्यात्मिक रूप से समुन्नत, समृद्ध एवं नित्यतृप्त करने का आह्वान किया।

## वार्षिकोत्सव सम्पन्न

**छपरा :** स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम में १७ से २० अप्रैल २००५ तक चतुर्दिवसीय वार्षिकोत्सव का दिव्य आयोजन किया गया। १७ अप्रैल को श्रीरामृष्ण दिवस के रूप में मनाया गया। जिसके प्रातःकालीन सत्र में रामकृष्ण मिशन आश्रम, चंडीगढ़ के सचिव स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में चिकित्सक शिविर का आयोजन हुआ। 3 घंटों तक चले इस शिविर में नगर के अनेक चिकित्सकों ने सहभागिता की। छपरे में यह अपने ढंग का प्रथम सफल सम्मोहक आयोजन था। रामकृष्ण मिशन टी०बी० सेनेटोरियम् के स्वामी सत्येशानन्द जी ने भी इस शिविर में प्रेरक व्याख्यान दिया।

उसी दिन के सांध्यकालीन सत्र में विद्यालय-महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं के लिए पूर्व में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में सफल हुए छात्र-छात्राओं को पारितोषिक प्रदान किया गया। इस समारोह की भी अध्यक्षता स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज ने की।

१८ अप्रैल को शिक्षक शिविर के रूप में श्री माँ सारदा दिवस मनाया गया। इस में विद्यालय-महाविद्यालयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं ने भाग लिया। अध्यक्ष थे स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी और विशिष्ट वक्ता थे राजेन्द्र कॉलेज, छपरा के पूर्व आचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० केदारनाथ लाभ। स्वामी सत्येशानन्द जी ने भी सभा को मुख्य अतिथि के रूप में सम्बोधित किया। उसी दिन के सांध्य सत्र में श्री माँ सारदा देवी के जीवन एंव संदेश पर एक जन सभा हुई। इसमें मुख्य अतिथि थे स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज तथा विशिष्ट वक्ता थीं जे.पी. विश्वविद्यालय की हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० उषा वर्मा।

१९ अप्रैल को प्रातः कालीन सत्र में युवाशिविर का आयोजन हुआ तथा सायंकालीन सत्र में स्वामी विवेकानन्द के जीवन और सन्देश पर जन सभा आयोजित हुई। युवा शिविर में युवकों के प्रश्नों के परम विवेकपूर्ण और प्रेरक उत्तर स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज ने दिये।

२० अप्रैल को स्वामी अद्भुतानन्द दिवस था। प्रातः कालीन सत्र ग्राम्य अंचल में मनाया गया। सांध्य सत्र में स्वामी अद्भुतानन्द जी के जीवन और संदेश पर जन सभा आयोजित हुई। अध्यक्ष थे स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी और विशिष्टि वक्ता थीं जे.पी. विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की रीडर डॉ० सरोज वर्मा। सभी वक्ताओं ने चारों दिन अपने-अपने विषय पर बड़े ही सारगर्भ व्याख्यान प्रदान कर श्रोताओं में महान् ज्ञान और श्रेष्ठ भावों का संचार किया। आश्रम के सचिव स्वामी मुनीश्वरानन्द जी इन समस्त कार्यों के प्रेरक स्रोत के रूप में अनवरत उपस्थित रहे।

## श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा द्वारा १७ अप्रैल को आयोजित चिकित्सकों का अध्यात्मिक शिविर : एक प्रतिवदेन

### प्रस्तुति : अजय कुमार दास, छपरा

श्री मुनीश्वरानन्द, सचिव, श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आध्यात्मिक चेतना की जागृति एवं श्री रामकृष्ण विकानन्द भावधारा के प्रचार प्रसार हेतु काफी गंभीर प्रयास किये जा रहे हैं। इसी प्रयास की तहत १७ अप्रैल को छपरा शहर के तमाम चिकित्सकों का एक आध्यात्मिक शिविर आयोजित किया गया जिसमें प्रायः ४०-५० चिकित्सकों ने सहभागिता की। इस आध्यात्मिक शिविर की सभी चिकित्सकों ने काफी सराहना की और भविष्य में इस प्रकार के आयोजन हेतु सचिव से आग्रह किया।

इस आध्यात्मिक शिविर में चिकित्सकों ने अपनी जिज्ञासाओं को खुलकर प्रस्तुत किया और इस भागदौड़ की जिन्दगी में तनावमुक्त रहने के संदर्भ में किये गये बहुत सारे प्रश्नों के उत्तर-पाकर वे काफी संतुष्ट हुए।

स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी महाराज ( चंडीगढ़ ) ने चिकित्सकों को स्पष्ट रूप से बताया कि चिकित्सकों का पेशा काफी जिम्मेदारी से पूर्ण एवं समाज के प्रति ईमानदारी का है। इसलिए हमेशा पेशे के आदर्श को बनाये रखना चाहिए। चिकित्सकों को सदा ध्यान रखना चाहिए कि मरीजों का कम से कम खर्च में उचित इलाज हो जाय। रोगियों को सर्वदा भगवान के रूप में ही देखना चाहिए। रोगी को नारायण समझना चाहिए और उनकी चिकित्सा ईश्वर की पूजा समझकर करनी चाहिए। चिकित्सकों को अनावश्यक पैथोलौजिकल जाँच एवं अन्य उपकरणीय जाँचों से सदा बचना चाहिए जिसका सीधा खर्च मरीजों को वहन करना पड़ता है। स्वामीजी ने जोर देकर कहा कि आजकल स्वार्थवश कुछ चिकित्सक दवा-कम्पनियों से अनुचित लाभ उठाकर इस आदर्श पेशे के स्तर को गिरावट की ओर ले जा रहे हैं। इस कारण से इस पेशे को उपभोक्ता संरक्षक कानून का सामना करना पर रहा है। इसलिए आवश्यक है कि चिकित्सक अपनी नैतिकता एवं आदर्श को बनाये रखें ताकि इस आदर्श पेशे का आने वाले दिनों में सम्मान बरकरार रह सके और चिकित्सक समाज में अपने सम्मान को बनाये रख सकें। सभी चिकित्सक सदा आत्मविश्लेषण करते रहें कि जाने अनजाने वे पेशे की नैतिकता से कहीं दूर तो नहीं जा रहे हैं। स्वामी जी ने स्पष्ट कर दिया कि मरीज ही नारायण हैं जो चिकित्सकों को सभी भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रसन्नता दे सकते हैं।

स्वामी सत्येशानन्द महाराज ( रामकृष्ण मिशन टी०बी० सेनेटोरियम, राँची ) ने चिकित्सकों को अपनी आध्यात्मिक चेतना को जगाने का आंतरिक आह्वान किया। स्वामी जी ने कहा कि शरीर के विभिन्न भागों को हृदय ही महाधमनी द्वारा रक्त संचारित करता है किन्तु हृदय को स्वयं रक्त संचारण के लिए अलग से कोरोनरी धमनी का सहारा लेना पड़ता है। इसी प्रकार चिकित्सकों को तनावमुक्त जीवन जीने के लिए स्वयं का अध्यात्मिक विकाश करना परम आवश्यक है। नित्य ऐसी घटनाऐं प्रकाश में आ रही हैं कि चिकित्सक समुदाय स्वयं मानसिक रोगों के शिकार हो रहे हैं, जबकि वे समाज को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करने वाले हैं। इसलिए स्वामी जी ने जोर देकर कहा कि भौतिक विकास की अंधी दौड़ से बचना चाहिए और चिकित्सकों को अपना आध्यात्मिक विकाश करना चाहिए। क्योंकि आत्मबल एवं इच्छा शक्ति का विकाश ही आंतरिक शक्ति प्रदान करता है जो किसी भी शारीरिक बल की तुलना में अधिक शक्तिशाली होता है।

इस प्रकार चिकित्सकों का आध्यात्मिक शिविर काफी सफल रहा और दोनों स्वामीजनों ने कम शब्दों में स्पष्ट कर दिया कि चिकित्सा के क्षेत्र में आ रहे मूल्यों के विघटन का मूल-कारण स्वार्थ एवं भौतिक उपार्जन की अंधी दौड़ है जो चिकित्सकों को तनावपूर्ण जीवन जीने को बाध्य कर रही है। इसका एक मात्र समाधान ईश्वर की उपासना, सत्संग एवं पेशे की नैतिकता को बनाये रखना है। रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा ने छपरा जिले के रिविलगंज प्रखण्ड के गौतम स्थान में ( १ ) साड़ियाँ, धोतियों तथा बड़ी मात्रा में चारा एवं ९२ परिवारों को घर बनाने के लिए बाँस एवं आर्थिक सहायता प्रदान की।

( २ ) इस आश्रम ने छपरा जिले के अन्तर्गत नैनी गाँव के ५ परिवारों को साड़ियाँ, धोतियाँ तथा बाँस एवं कलईदार टीन के चदरे प्रदान किये। इन स्थानों पर लगी भयंकर आग से लोग बुरी तरह प्रभावित हुए थे।

□□□

# रामकृष्ण मिशन के नये शाखा-केन्द्र

## (१) रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द शैक्षणिक एवं शोध संस्थान

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के परमाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने विगत ४ जुलाई, २००५ को रामकृष्ण मिशन के संरक्षण में नव स्थापित मान्य विश्वविद्यालय (Deemed-to-be-university) रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द शैक्षणिक एवं शोध संस्थान (Ramakrishna Mission Vivekananda Educational and Research Institute) का उद्घाटन किया। इस अवसर पर आयोजित सभा में उन्होंने आशीर्वादात्मक व्याख्यान दिया। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के क्रमश: उपाध्यक्ष तथा महासचिव श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज एवं स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज ने भी सभा को सम्बोधित किया।

इस नव संस्थापित विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में २० जुलाई को केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री श्री अर्जुन सिंह ने बेलुड़ मठ में व्यांख्यान दिया। उन्होंने 'रामकृष्ण मिशन स्वामी विवेकानन्द का पैतृक गृह एवं सांस्कृतिक केन्द्र 'कोलकाता' का भी भ्रमण किया।

रामकृष्ण मिशन के शासी नकाय ने निर्णय लिया है कि यू०जी०सी० एक्ट के तहत यह मान्य विश्वविद्यालय मिशन का एक केन्द्र होगा। इसका पता है–रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द एडुकेशनल एण्ड रिसर्च इंस्टिच्यूट, पो० बेलुड़ मठ, जिला-हावड़ा, पं०-बंगाल, 711202 । स्वामी आत्मप्रियानन्द को इस केन्द्र का प्रधान नियुक्त किया गया है।

## (२) रामकृष्ण मिशन, कुड्डपा (आंध्र)

आंध्र प्रदेश के कुड्डपा में गत ११ जुलाई को रामकृष्ण मिशन का नया शाखा केंन्द्र खोला गया है। यहाँ वर्षो पहले श्रीरामकृष्ण के अनन्य शिष्य एवं रामकृष्ण मठ एवं मिशन के द्वितीय अध्यक्ष स्वामी शिवानन्द जी महाराज पधारे हुए थे। एक मुसलमान भक्त ने उस समय आश्रम के लिए ६०'×७०' फीट का एक छोटा-सा भूखण्ड दान में दिया था जिसमें कुछ कमरे भी थे। अब आंध्र सरकार ने इस आश्रम के लिए ६० एकड़ भूमि प्रदान की है। आश्रम का पता है–रामकृष्ण मिशन, नं० ५/४७६, ट्रंक रोड, कुडुप्पा-५१६००१ श्रीमत् स्वामी आत्मविदानन्द जी महाराज को इस आश्रम का सचिव नियुक्त किया गया है।

## (३) रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल, बदोदड़ा (गुजरात)

गुजरात राज्य के बदोदड़ा में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल के नाम से रामकृष्ण मिशन का नया शाखा केन्द्र स्थापित किया गया है। इस अवसर पर स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज एवं गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी उपस्थित थे। स्वामी निखिलेश्वरानन्द आश्रम के सचिव नियुक्त हुए हैं। पता है–रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल, दिलाराम बंग्ला, सर्किट हाउस के सामने, आर०सी० दत्ता रोड, बदोंदड़ा, गुजरात-३९०००७.

## रायपुर में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिभा का अनावरण

रायपुर में स्वामी विवेकानन्द ने लगातार २ वर्षों तक निवास किया था। कोलकाता के बाद सर्वाधिक काल तक एक साथ वे यहीं रहे थे। बुड़ा तालाब के निकट। आज उस तालाब को विवेकानन्द सरोवर कहा जाता है। रायपुर में उनके ठहरने के १२५वें वर्ष के अवसर पर छत्तीसगढ़ की सरकार और रायपुर की नगरपालिका ने स्वामीजी की प्रतिमा इसी सरोवर के निकट स्थापित की। १६ अप्रैल २००५ को भारत के पूर्व प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने प्रतिमा का अनावरण किया। ३१ फीट लम्बी यह प्रतिमा ६० टन सीमेन्ट कंक्रीट से बनी है जो स्वामीजी की अबतक की सब से ऊँची प्रतिमा है।

□

# रामकृष्ण मिशन आश्रम

लाटू महाराज पथ, छपरा–841301, ( बिहार )

e-mail-rkmchapra@rediffmail.com

## सविनय निवेदन

प्रिय बन्धुगण,

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा ( बिहार ) विश्वविख्यात रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ का एक नवीन शाखा-केन्द्र है। आपको विदित है कि छपरा भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के अन्यतम लीलापार्षद एवं विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द के गुरुभ्राता स्वामी अद्भुतानन्द जी महाराज ( लाटू महाराज ) का जन्म जिला है। वे श्रीरामकृष्ण के एकमात्र बंगालेतर प्रदेश के निवासी थे। स्वभावतः श्रीरामकृष्ण के भक्तों, उपासकों एवं अनुरागियों के लिए छपरा एक पावन तीर्थस्थल है।

स्वामी अद्भुतानन्दजी की स्मृति को अक्षुण्ण रखने तथा उनके प्रति अहोभाव प्रकट करने के लिए भगवान श्रीरामकृष्ण के कुछ स्थानीय अनुरागी भक्तों द्वारा 11 अगस्त, 1984 ई० ( श्रावणी पूर्णिमा ) को छपरे में श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम की स्थापना की गयी थी। 11 अप्रैल, 2003 ( रामनवमी ) को बेलुड़ मठ ने रामकृष्ण मिशन आश्रम के नाम से इसका अधिग्रहण किया।

विगत 2 वर्षों में रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा ने लोगों में आध्यात्मिक चेतना जागृत करने तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावादर्शों का व्यापक प्रचार-प्रसार करने के अतिरिक्त दीन-दरिद्र एवं समाज के दबे-कुचले लोगों की सेवा के हेतु विभिन्न प्रशंसनीय कार्यों का शुभारम्भ किया है। इनमें समाज के निर्धन बच्चों के लिए निःशुल्क भोजन-वस्त्र सहित शिक्षा की व्यवस्था, छठे वर्ग से दशम् वर्ग के लिए स्वपाठ एवं कोचिंग व्यवस्था, निःशुल्क चिकित्सालय, समृद्ध पुस्तकालय, चल-चिकित्सालय एवं पीड़ित लोगों के लिए राहत कार्य आदि प्रमुख हैं।

इन सभी कार्यों के सफल संचालन के लिए हमें आपके शिवात्मक सहयोग, सहृदय सहानुभूति एवं सक्रिय सहभागिता की नितान्त आवश्यकता है।

हमारी तात्कालिक आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं–

| | | |
|---|---|---|
| 1. | चिकित्सालय सह सार्वजनिक पुस्तकालय-भवन-निर्माण हेतु | 25 लाख रुपये |
| 2. | ग्राम्य विकास परियोजना : ( अनौपचारिक शिक्षा, चल चिकित्सालय तथा पेयजल व्यवस्था ) | 5 लाख रुपये |
| 3. | आश्रम के संचालन एवं संरक्षण के लिए वार्षिक | 5 लाख रुपये |
| 4. | आश्रम के अन्तर्पथ-निर्माण के लिए | 2 लाख रुपये |

आपसे हमारा आन्तरिक एवं विनम्र निवेदन है कि आप उपर्युक्त कार्यों के लिए हमें मुक्त हस्त से उदारतापूर्ण दान देने की अनुकम्पा करें। आपका छोटे से छोटा दान भी हमारे लिए महत्तम दान सिद्ध होगा। आप नियमित रूप से मासिक अथवा एक साथ वार्षिक दान भी दे सकते हैं।

**चेक/ड्राफ्ट 'रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा'** के नाम से बना कर सचिव के पास भेजा जाय। इस आश्रम को दिया गया दान 80 (G) के अन्तर्गत आयकर से मुक्त है।

प्रभु से आपके सतत मंगल की प्रार्थना के साथ–

भवदीय

**स्वामी मुनीश्वरानन्द**

सचिव

डाक पंजीयित संख्या – सी.एच.पी. १४-८३
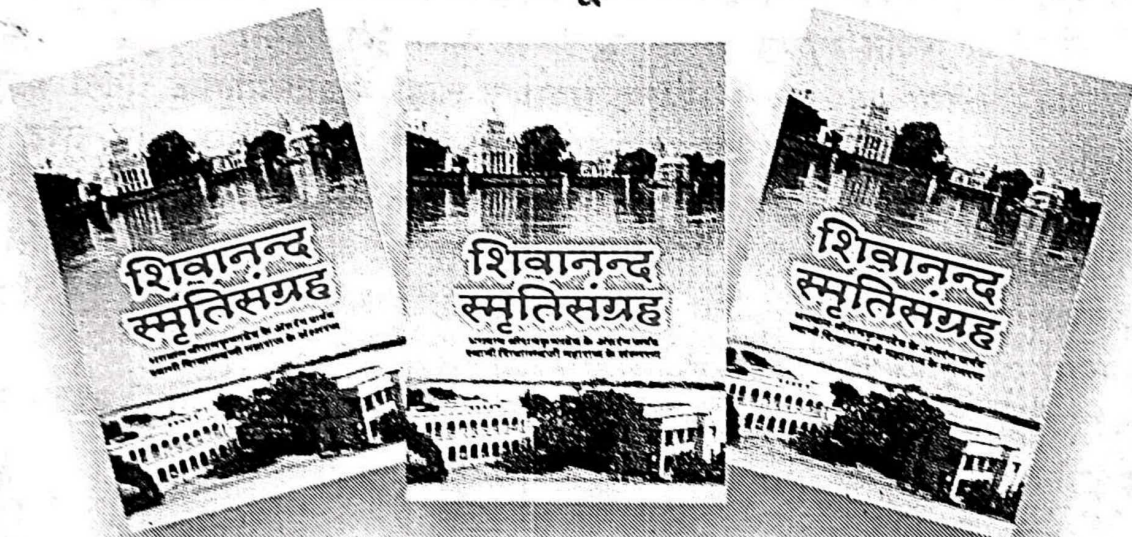


डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।

मुद्रक : वृषाली ऑफसेट, नागपुर-१८